जैन संस्कृति रक्षक संघ साहित्य रत्नमाला का २५वाँ रत्न

जैन सिद्धान्त थोक संग्रह

भाग - २



संग्राहक

श्री धींगड़मलजी गिड़िया
जोधपुर (राज.)

प्रकाशक

श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन
संस्कृति रक्षक संघ,
नेहरू गेट ब्यावर - ३०५९०१

द्रव्य सहायक

श्री पी. एम. बोहरा साहित्य प्रचार समिति

प्राप्ति स्थान

१. श्री अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संस्कृति रक्षक संघ, नेहरू गेट, ब्यावर - ३०५ ९०१

२. श्री जैन ज्ञान श्रावक संघ, सिटी पुलिस, जोधपुर (राज.)

३. श्री जशवन्तभाई शाह एदुन बिल्डिंग पहली धोबी तलावलेन पो. बॉ. नं. २२१७ बम्बई - २

४. श्रीमान् भंवरलालजी बांठिया नं. ९ पुलियान तोप हाईरोड़, मद्रास - १२

५. श्रीमान् हस्तीमलजी किशनलालजी जैन ६७ बालाजीपेठ, जलगांव - ४२५००१

६. श्री एच. आर डोशी, अनुपम मेटल्स १९/२० शक्तिनगर दिल्ली - ७ फोन नं. ७१३१३०४

७. श्रीमान् सन्तोषजी जैन, रामपुरा बाजार, कोटा (राज.)

८. श्री जैन युवा संगठन, नाथद्वारा (राज.)

अल्प मूल्य : ५-००

पांचवीं आवृत्ति
३०००

वीर संवत् २५२२
विक्रम संवत् २०५३
जुलाई १९९६

प्रकाशन व्यवस्थापक - विद्या प्रकाशन मंदिर मेरठ (उ. प्र.)

संग्राहक का निवेदन

श्री साधुमार्गी जैन पाठशाला जोधपुर का संचालन करते हुए मेरे मन में, विद्यार्थियों के अभ्यास के लिए थोकड़ों के संग्रह की ऐसी पुस्तक की आवश्यकता लगी - जिसमें कुछ चुनी हुई उपयोगी शिक्षा तथा तत्त्वज्ञान सम्बन्धी छोटे बड़े थोकड़ों का संग्रह हो । महापुरुषों की कृपा से कुछ थोकज्ञान प्राप्त किया, उसे विद्यार्थियों को सिखा कर तात्त्विक जानकारी बढ़ाने की मेरी भावना थी, वह आज कुछ अंशों में कार्यरूप में आती देख कर प्रसन्नता होती है । इससे विद्यार्थी सरलता से अभ्यास कर सकेंगे और अन्य धर्मबन्धु भी तत्त्वज्ञान का लाभ ले सकेंगे । समाज में तत्त्वज्ञान बढ़े, धार्मिक रुचि में वृद्धि हो और श्री जिनधर्म की आराधना कर भव्य जीव आत्मोत्थान करें, यही ऐसे प्रकाशनों का उद्देश्य होता है । आशा है धर्मप्रिय बन्धुगण और बहिनें, इस पुस्तक से अपना अभ्यास बढ़ा कर मेरे परिश्रम को सफल करेंगे ।

सर्राफा बाजार, जोधपुर
दिनांक : ३०-३-६६

विनीत
धींगड़मल जैन

इस आवृत्ति के विषय में निवेदन

दृढ़धर्मी प्रियधर्मी तत्त्वज्ञ सुश्रावक श्रीमान् धींगडमल जी सा. गिड़िया जोधपुर निवासी द्वारा संगृहीत जैन सिद्धान्त थोक संग्रह भाग २ चौथी आवृत्ति का सन् १९९२ में प्रकाशन हुआ। लगभग ४ वर्ष के अंतराल से यह पांचवीं आवृत्ति आवश्यक संशोधन के साथ प्रकाशित की जा रही है।

पूर्व प्रकाशित आवृत्ति का आद्योपरांत सूक्ष्म अवलोकन तत्त्वज्ञ सुश्रावक श्रीमान् प्रेमचन्द जी सा. कोठारी बूंदी ने किया। जहाँ जहाँ आपको धारणा संबंधी कुछ शंकाएं हुई उसका समाधान आपने पूज्य गुरु भगवंतों एवं सुज्ञ तत्त्वज्ञ श्रावकों से प्राप्त कर इसे संशोधित किया है। विशेष कर **अठाणु बोल** एवं **गुणस्थान स्वरूप** के थोकडों में संशोधन किया गया है। गुणस्थान स्वरूप के थोकड़े में पाठकों की जानकारी के लिये आकर्ष द्वार बढ़ाया गया है और मार्गणा द्वार को विशेष स्पष्ट किया गया है।

अतः संघ आपका अत्यन्त आभारी है।

कागज एवं छपाई आदि के भाव बढ़ने के बावजूद भी श्री पी. एम. बोहरा साहित्य प्रचार समिति के सहयोग के कारण यह पुस्तक लागत से भी कम मूल्य में पाठकों की सेवा में प्रस्तुत की जा रही है।

इस प्रकाशन में विद्या प्रकाशन मंदिर मेरठ के व्यवस्थापकों का पूर्ण सहयोग रहा, अतः संघ आपका अत्यन्त आभारी हैं।

ब्यावर
१५ जुलाई १९९६

विनीत
नेमीचन्द बांठिया

जैन सिद्धांत थोक संग्रह

भाग - २

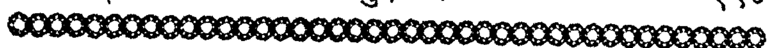
लघुदण्डक

जीवाभिगम सूत्र की प्रथम प्रतिपत्ति में २४ दंडक के जीवों का वर्णन है, उसके आधार से लघुदंडक का थोकड़ा इस प्रकार है ।

चौबीस दण्डक के नाम

गाथा - नेरइआ असुराई, पुढवाई बेइंदियादओ चेव ।
पंचिंदिय-तिय-नरा, वंतर-जोइसिय-वेमाणी ।। १ ॥

अर्थ - १. नेरइआ - सात नारकी का एक दण्डक २-११. असुराई - असुरकुमारादि दस भवनपति के दस दण्डक १२-१६. पुढवाई - पृथ्वीकायादि पाँच स्थावर के पाँच दण्डक १७-१९. बेइंदियादओ - बेइन्द्रियादि तीन विकलेन्द्रिय के तीन दण्डक । २०. पंचिंदिय-तिय-नरा - पंचेन्द्रिय तिर्यंच का एक दण्डक तथा २१. मनुष्य का एक दण्डक । २२. वंतर - व्यंतरदेव-वाणव्यंतर देवों का एक दण्डक । २३. जोइसिय - पाँच ज्योतिषी देवों का एक दण्डक । २४. वेमाणी - वैमानिक देवों का एक दण्डक । ये सब चौबीस दंडक हुए ।



संग्रहणी गाथाएँ -

सरीरोगाहण-संघयण-संठाण कसाय तह य हुंति सन्नाओ।
लेसिंदिय-समुग्घाए सन्नी वेए य पज्जत्ती ।। १ ॥
दिट्ठी दंसण-नाणे जोगुवओगे तहा किमाहारे ।
उववाय ठिई समुग्घाय चवण-गइरागई चेव ।। २ ॥
पाणे जोगे ।

अर्थ - १ शरीर २ अवगाहना ३ संहनन ४ संस्थान ५ कषाय ६ संज्ञा ७ लेश्या ८ इंद्रिय ९ समुद्घात १० संज्ञी ११ वेद १२ पर्याप्ति १३ दृष्टि १४ दर्शन १५ ज्ञान १६ योग १७ उपयोग १८ आहार १९ उत्पाद २० स्थिति २१ समुद्घात-समोहया असमोहया मरण २२ च्यवन २३ गति-आगति २४ प्राण और २५ योग-ये पच्चीस द्वार हैं ❀।

१. शरीर द्वार

शरीर क्षीण होने वाला अर्थात् विनाश होने वाला है, इसलिए इसे 'शरीर' कहते हैं । इसके पाँच भेद हैं - १. औदारिक, २. वैक्रिय, ३. आहारक, ४. तैजस और ५. कार्मण।

१. औदारिक शरीर - उदार अर्थात् प्रधान अथवा स्थूल पुद्गलों से बना हुआ शरीर - 'औदारिक' कहलाता है ।

तीर्थंकर और गणधरों का शरीर प्रधान पुद्गलों से बनता है । साधारण और सर्वसाधारण का शरीर स्थूल साधारण पुद्गलों से बनता है । मनुष्य और तिर्यंच को औदारिक शरीर प्राप्त होता है ।

❀ जीवाभिगम सूत्र प्र. १ में २३ द्वार ही हैं, पीछे के २ नहीं हैं ।



२. वैक्रिय शरीर - जिस शरीर से विविध क्रियाएँ होती हैं, उसे 'वैक्रिय शरीर' कहते हैं ।

विविध क्रियाएं ये हैं - एक स्वरूप धारण करना, अनेक स्वरूप धारण करना, छोटा शरीर धारण करना, बड़ा शरीर धारण करना, आकाश में चलने योग्य शरीर धारण करना, भूमि पर चलने योग्य शरीर धारण करना, दृश्य शरीर धारण करना, अदृश्य शरीर धारण करना, इत्यादि अनेक प्रकार की अवस्थाओं को वैक्रिय शरीरधारी जीव कर सकता है ।

वैक्रिय शरीर दो प्रकार का है - १. औपपातिक और २. लब्धिप्रत्यय ।

देव और नारकों का शरीर 'औपपातिक' कहलाता है अर्थात् उनको जन्म से ही वैक्रिय-शरीर मिलता है । 'लब्धिप्रत्यय' शरीर तिर्यंच और मनुष्यों को होता है । मनुष्य और तिर्यंच तप आदि के द्वारा प्राप्त की हुई शक्ति विशेष से वैक्रिय शरीर प्राप्त कर लेते हैं।

३. आहारक शरीर - छठे गुणस्थानवर्ती १४ पूर्वधारी आहारक लब्धि प्राप्त मुनिराज को १४ पूर्व चितारते हुए कोई शंका उत्पन्न हो अथवा कोई वादी आकर मुनिराज को प्रश्न पूछे, उसका उत्तर १४ पूर्व में न हो अथवा उस समय मुनिराज का उपयोग नहीं लगे अथवा तीर्थंकर भगवान् की ऋद्धि दर्शन या प्राणी दया का प्रसंग उपस्थित होने पर वे मुनिराज आहारक लब्धि से जघन्य देश न्यून एक हाथ उत्कृष्ट एक हाथ प्रमाण अति विशुद्ध स्फटिक के समान निर्मल शरीर निकालते हैं । वह शरीर केवली भगवान् के पास शंका निवारण के लिए अथवा प्रश्न का उत्तर पूछने के लिए

पहुँचता है और प्रश्न का उत्तर लेकर आता है फिर वह शरीर मुनिराज के शरीर में प्रवेश करता है तब मुनिराज शंका का समाधान करते हैं । उस शरीर को 'आहारक शरीर' कहते हैं ।

४. तैजस शरीर - तैजस् पुद्‌गलों से बना हुआ शरीर 'तैजस्' कहलाता है । इस शरीर की उष्णता से खाये हुए अन्न का पाचन होता है और कोई-कोई तपस्वी क्रोध से उष्णतेजोलेश्या के द्वारा ओरों को हानि पहुँचाता है तथा प्रसन्न होकर शीतलतेजोलेश्या के द्वारा लाभ पहुँचाता है, वह इसी तैजस्-शरीर के प्रभाव से होता है अर्थात् आहार के पाचन का हेतु तथा उष्ण तेजोलेश्या और शीतल तेजोलेश्या के निर्गमन का हेतु जो शरीर है, वह 'तैजस्-शरीर' कहलाता है ।

५. कार्मण शरीर - कर्मों का बना हुआ शरीर 'कार्मण-शरीर' कहलाता है अर्थात् जीव के प्रदेशों के साथ लगे हुए आठ प्रकार के कर्म-पुद्‌गलों को 'कार्मण-शरीर' कहते हैं । यह कार्मण-शरीर सभी शरीरों का बीज है । इसी शरीर से जीव अपने मरण देश को छोड़ कर उत्पत्ति स्थान पर जाता है ।

समस्त संसारी जीवों के तैजस् शरीर और कार्मण शरीर, ये दो शरीर अवश्य (नियमा) होते हैं ।

२. अवगाहना द्वार

जीव का शरीर, जितने आकाश प्रदेशों को अवगाहे (रोके) उसे अवगाहना कहते हैं । वह जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग और उत्कृष्ट १००० योजन झाझेरी (कुछ अधिक), उत्तर वैक्रिय करे, तो जघन्य अंगुल का असंख्यातवां भाग, उत्कृष्ट एक लाख योजन से अधिक ।



३. संहनन द्वार

हड्डियों की रचना विशेष को 'संहनन' कहते हैं । इसके छह भेद हैं ।

१. वज्रऋषभ-नाराच संहनन - वज्र का अर्थ - कील है, ऋषभ का अर्थ वेष्टन-पट्ट (पट्टा) है और नाराच का अर्थ दोनों ओर से मर्कट-बन्ध है । जिस संहनन में दोनों ओर से मर्कट-बन्ध द्वारा जुड़ी हुई दो हड्डियों पर तीसरी पट्ट की आकृति वाली हड्डी का चारों ओर से वेष्टन हो और जिसमें इन तीनों हड्डियों को भेदने वाली हड्डी की वज्र नामक कील हो, उसे 'वज्र-ऋषभ-नाराच संहनन' कहते हैं ।

२. ऋषभ-नाराच संहनन - जिस संहनन में दोनों ओर से मर्कट-बन्ध द्वारा जुड़ी हुई दो हड्डियों पर तीसरी पट्ट की आकृति वाली हड्डी का चारों ओर से वेष्टन हो, परन्तु तीनों हड्डियों को भेदने वाली वज्र नामक हड्डी की कील नहीं हो, उसे 'ऋषभ-नाराच-संहनन' कहते हैं ।

३. नाराच-संहनन - जिस संहनन में दोनों ओर से मर्कट-बन्ध द्वारा जुड़ी हुई हड्डियाँ हों, परन्तु इनके चारों ओर वेष्टन-पट्ट और वज्र नामक कील नहीं हो, उसे 'नाराच-संहनन' कहते हैं ।

४. अर्धनाराच-संहनन - जिस संहनन में एक ओर मर्कट-बन्ध हो, उसे 'अर्ध-नाराच-संहनन' कहते हैं ।

५. कीलिका संहनन - जिस संहनन में हड्डियाँ केवल कील से जुड़ी हुई हो, उसे 'कीलिका संहनन' कहते हैं ।

६. सेवार्त्तक संहनन - जिस संहनन में हड्डियाँ पर्यन्त भाग

में एक दूसरे को स्पर्श करती हुई रहती है तथा सदा चिकने पदार्थों के प्रयोग एवं तैलादि की मालिश की अपेक्षा रखती है, उसे 'सेवार्त्तक संहनन' कहते हैं ।

४. संस्थान द्वार

नामकर्म के उदय से बनने वाली शरीर की आकृति को 'संस्थान' कहते हैं । उसके छह भेद हैं -

१. समचतुरस्त्र (समचोरस) - ऊपर, नीचे तथा बीच में समभाग से शरीर की सुन्दराकार आकृति को 'समचोरस संस्थान' कहते हैं ।

२. न्यग्रोधपरिमण्डल - वट वृक्ष के समान शरीर की आकृति अर्थात् जिसमें नाभि से ऊपर का भाग प्रशस्त विस्तृत लक्षणयुक्त पूर्ण एवं शास्त्रानुसार प्रमाण वाला हो और नाभि से नीचे का भाग हीन हो, उसे 'न्यग्रोधपरिमण्डल संस्थान' कहते हैं।

३. सादि - ऊपर वाले लक्षण से बिल्कुल विपरीत हो, जैसे ॅप की बाँबी अर्थात् नाभि से नीचे का भाग उत्तम प्रमाण वाला हो और नाभि से ऊपर का भाग हीन हो, उसे 'सादि संस्थान' कहते हैं ।

४. कुब्जक (कुबड़ा) - जिस शरीर के हाथ, पाँव, मुख और ग्रीवादिक उत्तम हों और हृदय, पेट, पीठ अधम (हीन) हों, उसे 'कुब्जक संस्थान' कहते हैं ।

५. वामन - बौना शरीर हो अर्थात् जिस शरीर में हाथ, पाँव आदि अवयव हीन हों और छाती, पेट आदि पूर्ण हों, उसे 'वामन संस्थान' कहते हैं ।



६. **हुण्डक** - जिस शरीर में सभी अंगोपांग किसी खास आकृति के न हों (खराब हों) उसे 'हुण्डक संस्थान' कहते हैं ।

५. कषाय द्वार

क्रोधादि रूप आत्मा के विभाव परिणामों को 'कषाय' कहते हैं । इसके चार भेद हैं - १. क्रोध, २. मान, ३. माया और ४. लोभ ।

६. संज्ञा द्वार

आहारादि की अभिलाषा करना 'संज्ञा' है । इसके चार भेद हैं ।

१. आहार-संज्ञा, २. भय-संज्ञा, ३. मैथुन-संज्ञा और ४. परिग्रह-संज्ञा ।

७. लेश्या द्वार

योग की प्रवृत्ति से उत्पन्न आत्मा के शुभाशुभ परिणाम को लेश्या कहते हैं । इसके छह भेद हैं - १. कृष्ण-लेश्या, २. नील-लेश्या, ३. कापोत-लेश्या, ४. तेजो-लेश्या, ५. पद्म-लेश्या और ६. शुक्ल-लेश्या ।

८. इन्द्रिय द्वार

आत्मा के चिह्न को 'इंद्रिय' कहते हैं । इसके पाँच भेद हैं -

१. श्रोत्र-इंद्रिय (कान), २. चक्षु-इन्द्रिय (आँख), ३. घ्राण-इन्द्रिय (नाक), ४. रसना-इन्द्रिय (जीभ) और ५. स्पर्शन-इन्द्रिय (संपूर्ण शरीर व्यापी त्वचा) ।

९. समुद्घात द्वार

वेदना आदि के साथ तन्मय होकर मूल शरीर को विना छोड़े प्रबलता से आत्म-प्रदेशों को शरीर अवगाहना से वाहर निकाल कर असाता वेदनीय आदि कर्मों का नाश करना समुद्घात कहलाता है । इसके सात भेद हैं । यथा - १. वेदनीय २. कषाय ३. मारणांतिक ४. वैक्रिय ५. तैजस् ६. आहारक और ७. केवली ।

१. वेदनीय समुद्घात - असाता वेदनीय कर्म के कारण आत्म-प्रदेशों में स्पन्दन होकर कुछ आत्म-प्रदेशों का शरीरा-वगाहना से बाहर आ जाना वेदनीय समुद्घात है । इसके द्वारा उदय प्राप्त असाता वेदनीय कर्म का नाश होता है । साता वेदनीय कर्म की समुद्घात नहीं होती है ।

२. कषाय समुद्घात - तीव्र क्रोधादि कषायों के कारण आत्म-प्रदेशों में स्पन्दन होकर कुछ आत्म-प्रदेशों का शरीरा-वगाहना से बाहर आ जाना कषाय समुद्घात कहलाता है । इसके द्वारा उदय प्राप्त कषाय मोहनीय का नाश होता है । चारों कषायों की समुद्घात होती है ।

३. मारणांतिक समुद्घात - मृत्यु से अन्तर्मुहूर्त्त पूर्व उत्पत्ति के स्थान तक लंबा (शरीर प्रमाण चौड़ा एवं जाड़ाई वाला) आत्म-प्रदेशों का दंड निकालना, मारणांतिक समुद्घात कहलाता है ।

४. वैक्रिय समुद्घात - वैक्रिय रूपों का निर्माण करने हेतु वैक्रिय वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करने के लिये आत्म-प्रदेशों का एक दिशा अथवा विदिशा में संख्यात योजन तक का दण्ड

निकालना (जाड़ाई व चौड़ाई में शरीर प्रमाण-दण्ड होता है) वैक्रिय समुद्घात कहलाता है । इसमें वैक्रिय नाम कर्म की क्षपणा होती है ।

५. तैजस् समुद्घात - शीतल अथवा उष्ण तेजोलेश्या किसी पर डालने हेतु तैजस् पुद्गलों को ग्रहण करने के लिये संख्यात योजन तक का एक दिशा अथवा विदिशा में आत्म-प्रदेशों का दंड निकालना (यह भी जाड़ाई व चौड़ाई में शरीर प्रमाण ही होता है) तैजस् समुद्घात कहलाता है । इसमें तैजस् नामकर्म की क्षपणा होती है ।

६. आहारक समुद्घात - जीवदया, ऋद्धि दर्शन, ज्ञान ग्रहण या संशय निवारण हेतु चौदह पूर्वधारी मुनि द्वारा आहारक पुतला बनाने हेतु आहारक वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करने के लिये संख्यात योजन का आत्म-प्रदेशों का दण्ड निकालना (जाडाई व चौड़ाई में शरीर प्रमाण दण्ड होता है) आहारक समुद्घात कहलाता है । इसमें आहारक शरीर नामकर्म की क्षपणा होती है ।

७. केवली समुद्घात - वेदनीय आदि कर्मों को खपाने के लिये चार समयों में आत्म-प्रदेशों को समग्र लोक में फैला देना एवं चार समयों में पुनः संकोचित करके शरीरस्थ हो जाना, केवली समुद्घात कहलाता है । इसमें आयु से अधिक स्थिति वाले वेदनीय, नाम और गोत्र कर्मों की क्षपणा होती है । जिन महापुरुषों की आयु ६ माह अथवा उससे कम शेष रहने पर केवलज्ञान की प्राप्ति होती है, उनमें से जिन की आयु कम व वेदनीय आदि कर्मों की स्थिति अधिक होती है, उनकी स्थिति सम करने के लिये केवली समुद्घात करते हैं । केवली समुद्घात के अन्तर्मुहूर्त बाद अवश्य मोक्ष हो जाता है ।



१०. संज्ञी द्वार

जिसे मन हों, उसे 'संज्ञी' और जिसके मन नहीं हो, उसे 'असंज्ञी' कहते हैं ।

११. वेद द्वार

नाम कर्म के उदय से होने वाले शरीर के स्त्री, पुरुष और नपुंसक रूप चिह्न को 'द्रव्य वेद' कहते हैं और मोहनीय कर्म के उदय से जीव की विषय-भोग की अभिलाषा को 'भाव वेद' कहते हैं । उसके तीन भेद हैं - १. स्त्री वेद २. पुरुष वेद और ३. नपुसंक वेद ।

१२. पर्याप्ति द्वार

आहारादि के पुद्गलों को ग्रहण करने तथा उन्हें आहार शरीरादि रूप परिणमाने की आत्मा की शक्ति विशेष को 'पर्याप्ति' कहते हैं । इसके छह भेद हैं - १. आहार पर्याप्ति २. शरीर पर्याप्ति ३. इन्द्रिय पर्याप्ति ४. श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, ५. भाषा पर्याप्ति और ६. मनःपर्याप्ति ।

१३. दृष्टि द्वार

तत्त्व विचारणा की रुचि को 'दृष्टि' कहते हैं । इसके तीन भेद हैं -

१. सम्यग्दृष्टि - जिसको दर्शनमोहनीय कर्म का उपशम, क्षय या क्षयोपशम होने पर जीवादि तत्त्वों की यथार्थ श्रद्धा उत्पन्न होती है, उसे 'सम्यग्दृष्टि' कहते हैं ।

२. मिथ्यादृष्टि - जिस जीव को दर्शनमोहनीय कर्म के



उदय से जीवादि तत्त्वों की विपरीत श्रद्धा होती है, उसे 'मिथ्यादृष्टि' कहते हैं ।

३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्र) - मिश्र मोहनीय कर्म के उदय से कुछ सम्यक् और कुछ मिथ्यात्व रूप मिश्रित परिणाम होता है, उसे 'सम्यग्मिथ्यात्व' कहते हैं । शक्कर मिले हुए दही के खाने से जैसे खटमीठा मिश्ररूप स्वाद आता है, वैसे ही जो सम्यक्त्व और मिथ्यात्व दोनों से मिला हुआ परिणाम होता है, उसे 'सम्यग्मिथ्यादृष्टि' कहते हैं ।

१४. दर्शन द्वार

जिसमें महासत्ता का सामान्य प्रतिभास (निराकार झलक) हो, उसे 'दर्शन' कहते हैं । दर्शन के चार भेद हैं -

१. चक्षु दर्शन - नेत्रजन्य मतिज्ञान से पहिले होने वाले सामान्य प्रतिभास या अवलोकन को 'चक्षु दर्शन' कहते हैं ।

२. अचक्षु दर्शन - नेत्र के सिवाय दूसरी इन्द्रियों और मन सम्बन्धी मतिज्ञान के पहिले होने वाले सामान्य अवलोकन को 'अचक्षु दर्शन' कहते हैं ।

३. अवधि दर्शन - अवधिज्ञान से पहले होने वाले सामान्य अवलोकन को 'अवधिदर्शन' कहते हैं ।

४. केवल दर्शन - केवलज्ञान के उपयोग के बाद होने वाले सामान्य धर्म के अवलोकन (उपयोग) को 'केवल-दर्शन' कहते हैं ✿ ।

✿ छद्मस्थों में पहले दर्शन का उपयोग होता है बाद में ज्ञान का उपयोग होता है । अछद्मस्थों (केवली) में पहले ज्ञान का उपयोग होता है । फिर दर्शन का उपयोग होता है ।

१५. ज्ञान द्वार

किसी विवक्षित पदार्थ के विशेष धर्म को विषय करने वाला 'ज्ञान' कहलाता है । इसके दो भेद हैं – सम्यग्ज्ञान और मिथ्याज्ञान । सम्यग्ज्ञान के पांच भेद हैं – मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान ।

१. मतिज्ञान – इन्द्रिय और मन की सहायता से जो ज्ञान हो, उसे 'मतिज्ञान' कहते हैं ।

२. श्रुतज्ञान – मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ से सम्बन्धित किसी दूसरे पदार्थ के ज्ञान को 'श्रुतज्ञान' कहते हैं । जैसे – "घट" शब्द सुनने के अनन्तर उत्पन्न हुआ कंबुग्रीवादि रूप घट का ज्ञान ।

३. अवधिज्ञान – द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा लिये हुए जो रूपी पदार्थ को स्पष्ट जाने ।

४. मनःपर्ययज्ञान – द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की मर्यादा लिये हुए जो दूसरे के मन में रहे हुए रूपी पदार्थ को स्पष्ट जाने ।

५. केवलज्ञान – जो त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थ को हस्तामलकवत् स्पष्ट जाने ।

मिथ्याज्ञान के तीन भेद हैं – १. मतिअज्ञान, २ श्रुतअज्ञान, ३. विभंगज्ञान । ये तीन अज्ञान हैं ।

१६ योग द्वार

मन, वचन और काया की प्रवृत्ति को 'योग' कहते हैं इसके पंद्रह भेद हैं – ४ मन के, ४ वचन (भाषा) के और काया के ।



मन के चार भेद इस प्रकार हैं - १. सत्य मनोयोग, २. असत्य मनोयोग, ३. मिश्र मनोयोग और ४. व्यवहार मनोयोग।

वचन (भाषा) के चार भेद इस प्रकार हैं - १. सत्य वचन योग, २. असत्य वचनयोग, ३. मिश्र वचनयोग और ४. व्यवहार वचनयोग ।

काया के सात भेद इस प्रकार हैं - १. औदारिक शरीर काययोग, २. औदारिक मिश्र शरीर काययोग, ३. वैक्रिय शरीर काययोग, ४. वैक्रिय मिश्र शरीर काययोग, ५. आहारक शरीर काययोग, ६. आहारक मिश्र शरीर काययोग, ७. कार्मणशरीर काययोग ।

१७. उपयोग द्वार

ज्ञान और दर्शन में होती हुई आत्म-प्रवृत्ति को उपयोग कहते हैं । संक्षेप में उपयोग के दो भेद हैं - १. साकारोपयोग और २. अनाकारोपयोग । ये सभी दण्डकों में मिलते हैं । विस्तार से उपयोग के बारह भेद हैं - ५ ज्ञानोपयोग, ३ अज्ञानोपयोग और ४ दर्शनोपयोग ।

१८. आहार द्वार

जीव २८८ ✪ प्रकार के पुद्‌गलों का आहार करता है ।

✪ आहार के २८८ भेद ये हैं । (१) पुट्ठा (२) ओगाढ़ा (३) अनन्तरोगाढ़ा (४) सूक्ष्म (५) बादर (६) ऊंची दिशा का (७) नीची दिशा का (८) तिरछी दिशा का (९) आदि का (१०) मध्य का (११) अंत का (१२) स्वविषयक (१३) अनुक्रम से (१४) नियमात् छहों दिशा का (१५) द्रव्य



१९. उपपात द्वार

जीव पूर्वभव से आकर उत्पन्न हो, उसे 'उपपात' कहते हैं उसका परिमाण एक समय में १-२-३ यावत् संख्याता, असंख्याता और अनन्ता है ।

२०. स्थिति द्वार

जीव जितने काल तक जिस भव की पर्याय को धारण करे, उसे 'स्थिति' कहते हैं । उसका परिमाण-जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट ३३ सागरोपम ।

२१. समोहया असमोहया मरण द्वार

समोहया मरण - जो ईलिका गति समुद्घात करके मरे, अर्थात् कीड़ी की कतार की तरह जीव-प्रदेश पृथक् -पृथक् निकले, उसे 'समोहया मरण' कहते हैं ।

असमोहया मरण - जो गेंद (दड़ी) के उछलने की गति से मरे अर्थात् बन्दूक की गोली के समान जीव के प्रदेश एक साथ निकले, उसे 'असमोहया मरण' कहते हैं ।

से अनन्त प्रदेशी द्रव्य (१६) क्षेत्र से असंख्य प्रदेशावगाढ़ पुद्गलों का (१७ से २८ तक) काल के १२ भेद । एक समय की स्थिति के पुद्गलों का यावत् दस समय की स्थिति के पुद्गलों का, संख्यात समय की और असंख्यात समय की स्थिति के पुद्गलों का लेवे । (२९ से २८८ तक) भाव के २६० भेद हैं । पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस, आठ स्पर्श - ये २० भेद । इनके प्रत्येक के १३ भेद हैं । एक गुण काला, दो गुण काला यावत् दस गुण काला, संख्यात गुण काला, असंख्यात गुण काला और अनंत गुण काला, इसी तरह गन्धादि के तेरह तेरह भेद करने से २०×१३ = २६० हुए, २६०+२८ = २८८ ।



२२. च्यवन द्वार

जीव वर्त्तमान भव को छोड़कर अन्य भव की पर्याय को धारण करे, उसे 'च्यवन' कहते हैं । इसका परिमाण एक समय में १-२-३ यावत् संख्याता, असंख्याता और अनन्ता है ।

२३. गति-आगति द्वार

जीव मर कर भवान्तर में जावे, उसे 'गति' कहते हैं । इसके पांच भेद हैं - १. नारकी, २. तिर्यंच, ३. मनुष्य, ४. देव और ५. सिद्धि गति । आगति - भवान्तर से आ कर उत्पन्न होने को 'आगति' कहते हैं । उसके चार भेद हैं - १. नारकी, २. तिर्यंच, ३. मनुष्य और ४. देव । दण्डक की अपेक्षा २४ दण्डक से आवे और २४ दण्डक तथा मोक्ष में जावे ।

२४. प्राण द्वार

जीवन के आधारभूत पदार्थों को अर्थात् जिनके सद्भाव से जीव किसी शरीर के साथ बंधा रहे, उसे 'प्राण' कहते हैं । इसके दस भेद हैं - १. श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण, २. चक्षुरिन्द्रिय बल प्राण, ३. घ्राणेन्द्रिय बल प्राण, ४. रसनेन्द्रिय बल प्राण, ५. स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण, ६. मनोबल प्राण, ७. वचन बल प्राण, ८. कायबल प्राण, ९. श्वासोच्छ्वास बल प्राण और १०. आयुष्य बल प्राण ।

२५. योग द्वार

जिसके द्वारा आत्मा प्रवृत्ति करे, वह 'योग' कहलाता है । उसके तीन भेद हैं - १. मयोयोग, २. वचनयोग और ३. काययोग

नारकी और देवों पर २५ द्वार

अब एक दण्डक नारकी का और तेरह दण्डक देवों के (भवनपति के १० दण्डक, वाणव्यन्तर का १ दण्डक, ज्योतिषी का १ दण्डक और वैमानिक का १ दण्डक) इन १४ दण्डकों पर २५ द्वार कहते हैं ।

१. **शरीर** - शरीर पावे तीन - वैक्रिय, तैजस् और कार्मण ।

२. **अवगाहना** - पहली नारकी से सातवीं नारकी तक भवधारणीय शरीर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट पहली नारकी की ७॥। धनुष ६ अंगुल की

दूसरी नारकी की १५॥ धनुष १२ अंगुल की

तीसरी नारकी की ३१। धनुष

चौथी नारकी की ६२॥ धनुष

पांचवीं नारकी की १२५ धनुष

छठी नारकी की २५० धनुष

सातवीं नारकी की ५०० धनुष

उत्तर वैक्रिय करे, तो जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग, उत्कृष्ट अपनी-अपनी अवगाहना से दुगुनी । जैसे सातवीं नारकी की भवधारणीय शरीर की ५०० धनुष की और उत्तरवैक्रिय करे तो १००० धनुष की । भवनपति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी तथा पहले दूसरे देवलोक की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट ७ हाथ की । तीसरे देवलोक से सर्वार्थसिद्ध तक जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट इस प्रकार है -



तीसरे और चौथे देवलोक की ६ हाथ की

पाँचवें, छठे देवलोक की ५ हाथ की

सातवें, आठवें देवलोक की ४ हाथ की

नौवें से बारहवें देवलोक की ३ हाथ की

नवग्रैवेयक की २ हाथ की

पाँच अनुत्तर विमान में १ हाथ की ।

उत्तर-वैक्रिय करे तो जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग, उत्कृष्ट बारहवें देवलोक तक एक लाख योजन की । नवग्रैवेयक और अनुत्तर विमान के देवों में विक्रिया की शक्ति तो है परन्तु वे विक्रिया नहीं करते ।

३. संहनन - संहनन नहीं । नारकी में अशुभ पुद्गल परिणमे और देवों में शुभ पुद्गल परिणमे ।

४. संस्थान - नारकी के भवधारणीय शरीर और उत्तरवैक्रिय शरीर में एक हुण्डक संस्थान है । देवों के भवधारणीय शरीर में एक समचोरस संस्थान और उत्तर वैक्रिय-शरीर में विविध प्रकार का संस्थान होता है ।

५. कषाय - नारकी और देवों के १४ दण्डकों में चारों कषाय होती है ।

६. संज्ञा - नारकी और देवों के १४ दण्डकों में चारों संज्ञा पाई जाती है ।

७. लेश्या - पहली और दूसरी नारकी में एक कापोत लेश्या है । तीसरी नारकी में कापोत और नील लेश्या । चौथी नारकी में एक नील लेश्या । पांचवीं नारकी में नील और कृष्ण

लेश्या । छठी नारकी में कृष्ण लेश्या । सातवीं नारकी में महाकृष्ण लेश्या । भवनपति और वाणव्यन्तर देव में पहली चार लेश्या होती है । ज्योतिषी तथा पहिले-दूसरे देवलोक में तेजो लेश्या । तीसरे, चौथे और पांचवें देवलोक में पद्म लेश्या । छठे देवलोक से नवग्रैवेयक तक शुक्ल लेश्या । पांच अनुत्तर विमान में परम शुक्ल लेश्या ।

८. **इन्द्रिय** - नारकी और देवों में पांचों इन्द्रियाँ ।

९. **समुद्घात** - नारकी में समुद्घात चार - वेदनीय, कषाय, मारणांतिक और वैक्रिय । भवनपति से यावत् बारहवें देवलोक तक अनुक्रम से पांच समुद्घात । नवग्रैवेयक और पांच अनुत्तरविमान में भी शक्ति से समुद्घात पांच पावे, परंतु समुद्घात करते हैं तीन - वेदनीय, कषाय और मारणांतिक । (वे वैक्रिय और तैजस् समुद्घात नहीं करते हैं ।)

१०. **सन्नी** - पहली नारकी, भवनपति और वाणव्यन्तर में सन्नी-असन्नी दोनों उत्पन्न होते हैं । असन्नी कुछ देर असन्नी रह कर फिर सन्नी हो जाते हैं । दूसरी नारकी से सातवीं नारकी तक तथा ज्योतिषी से पांच अनुत्तरविमान तक सन्नी ही उत्पन्न होते हैं ।

११. **वेद** - नारकी में एक नपुंसक वेद पावे । भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और पहले-दूसरे देवलोक में वेद पावे दो - स्त्रीवेद और पुरुषवेद । तीसरे देवलोक से सर्वार्थसिद्ध विमान तक पुरुषवेद ही होता है ।

१२. **पर्याप्ति** - नारकी में पर्याप्ति पावे छह और देव में पर्याप्ति पांच पावे । क्योंकि भाषा और मन - ये दोनों पर्याप्तियां

१३. दृष्टि - नारकी और भवनपति से लगा कर ग्रैवेयक तक दृष्टि पावे तीनों ही ❖ । पांच अनुत्तर विमान में एक सम्यग्दृष्टि ही होती है । १५ परमाधार्मिक ३ किल्विषी में एक मिथ्यादृष्टि ही होती है ।

१४. दर्शन - नारकी और देवों में दर्शन पावे तीन - चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन ।

१५. ज्ञान - नारकी और देवों में ज्ञान पावे तीन - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान ।

अज्ञान - नारकी और भवनपति से नवग्रैवेयक तक अज्ञान पावे तीन - मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंगज्ञान । पाँच अनुत्तर विमान में अज्ञान नहीं पावे । १५ परमाधार्मिक ३ किल्विषी में ३ अज्ञान ही होते हैं, ज्ञान नहीं होता ।

१६. योग - नारकी और देवों में योग पावे ग्यारह - ४ मन के, ४ वचन के और ३ काया के (वैक्रिय-शरीर काययोग, वैक्रियमिश्र शरीर काय योग और कार्मण शरीर काय-योग) ।

१७. उपयोग - नारकी और देवों में भवनपति से नवग्रैवेयक तक उपयोग पावे नौ - ३ ज्ञान, ३ अज्ञान और ३ दर्शन । पांच अनुत्तर विमान में उपयोग पावे छह - तीन ज्ञान और तीन दर्शन । १५ परमाधामी ३ किल्विषी में उपयोग पावे छह - ३ अज्ञान, ३ दर्शन ।

❖ भगवती सूत्र श. १३ उ. २ तथा श. २४ उ. २१ में तथा जीवाभिगम की चतुर्विधा नामक तृतीय प्रतिपत्ति के दूसरे वैमानिकोद्देशक में ग्रैवेयक तक तीनों दृष्टि बताई है । कर्म ग्रंथ भाग ३ गाथा ११ में ग्रैवेयक में गुणस्थान पहले से चौथे तक बताया है अर्थात् मिश्रदृष्टि मानी है ।



१८. आहार - नारकी और देव आहार लेवे २८८ भेद का। जिसमें दिशा की अपेक्षा नियमा छह दिशा का आहार लेवे ।

१९. उपपात - नारकी और भवनपति से लगा कर यावत् आठवें देवलोक तक एक समय में जघन्य १-२-३ यावत् संख्याता उत्कृष्ट असंख्याता उत्पन्न होवे । नौवें देवलोक से लगा कर यावत् सर्वार्थसिद्ध तक जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट संख्याता उत्पन्न होवे ।

२०. स्थिति - समुच्चय नारकी के नेरिये की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष की उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की ।

१ पहली नरक के नेरिये की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट १ सागरोपम की ।

२ दूसरी नारकी के नेरिये की स्थिति जघन्य एक सागरोपम, उत्कृष्ट ३ सागरोपम की ।

३ तीसरी नारकी के नेरिये की स्थिति जघन्य ३ सागरोपम उत्कृष्ट ७ सागरोपम की ।

४ चौथी नारकी के नेरिये की स्थिति जघन्य ७ सागरोपम, उत्कृष्ट १० सागरोपम की ।

५ पांचवीं नारकी के नेरिये की स्थिति जघन्य १० सागरोपम, उत्कृष्ट १७ सागरोपम की ।

६ छठी नारकी के नेरिये की स्थिति जघन्य १७ सागरोपम, उत्कृष्ट २२ सागरोपम की ।

७ सातवीं नारकी के नेरिये की स्थिति जघन्य २२ सागरोपम और उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की ।

भवनपति देवों की असुरकुमार जाति के दो इन्द्र हैं - चमरेन्द्र और बलीन्द्र ।



चमरेन्द्रजी के रहने की चमरचंचा राजधानी, जंबूद्वीप के मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा में अधोलोक में हैं । बलीन्द्रजी के रहने की बलीचंचा राजधानी जंबूद्वीप के मेरु पर्वत से उत्तर दिशा में अधोलोक में है । चमरेन्द्रजी के भवनवासी देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट एक सागरोपम और उनकी देवी की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट ३॥ पल्योपम की । शेष नौ जाति के दक्षिण-दिशा के भवनपति देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट १॥ पल्योपम और उनकी देवी की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट पौन (॥।) पल्योपम ।

बलीन्द्रजी के भवनवासी देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट एक सागरोपम झाझेरी । उनकी देवी की स्थिति जघन्य दस हजार और उत्कृष्ट ४॥ पल्योपम । शेष नौ जाति के उत्तर-दिशा वाले भवनपति देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट देशोन दो पल्योपम । उनकी देवी की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट देशोन एक पल्योपम ।

वाणव्यन्तर देवों की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट १ पल्योपम । उनकी देवी की स्थिति जघन्य दस हजार वर्ष, उत्कृष्ट अर्द्ध पल्योपम ।

ज्योतिषी देवों की स्थिति

ज्योतिषियों के पांच भेद हैं - १ चन्द्र, २ सूर्य, ३ ग्रह, ४ नक्षत्र और ५ तारा ।

चन्द्र-विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम, उत्कृष्ट १ पल्योपम और १ लाख वर्ष । उनकी देवियों की

स्थिति जघन्य पाव पल्योपम उत्कृष्ट आधा पल्योपम और ५० हजार वर्ष ।

सूर्य-विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम उत्कृष्ट १ पल्योपम और १ हजार वर्ष । उनकी देवियों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम उत्कृष्ट आधा पल्योपम और ५०० वर्ष ।

ग्रह-विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम उत्कृष्ट एक पल्योपम । उनकी देवियों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम, उत्कृष्ट आधा पल्योपम ।

नक्षत्र-विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम उत्कृष्ट आधा पल्योपम और इनकी देवियों की स्थिति जघन्य पाव पल्योपम, उत्कृष्ट पाव पल्योपम झाझेरी ।

तारा-विमानवासी देवों की स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग, उत्कृष्ट पाव पल्योपम । उनकी देवियों की स्थिति जघन्य पल्योपम के आठवें भाग, उत्कृष्ट पल्योपम के आठवें भाग झाझेरी ।

वैमानिक देवों की स्थिति

१ पहले देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य १ पल्योपम उत्कृष्ट २ सागरोपम । वहां देवियाँ दो प्रकार की हैं - १ परिगृहीता और २ अपरिगृहीता । परिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य १ पल्योपम, उत्कृष्ट ७ पल्योपम । अपरिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य १ पल्योपम, उत्कृष्ट ५० पल्योपम ।

२ दूसरे देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य १ पल्योपम झाझेरी उत्कृष्ट २ सागरोपम झाझेरी । वहाँ भी देवियाँ दो


प्रकार की हैं - परिगृहीता और अपरिगृहीता । परिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य १ पल्योपम झाझेरी, उत्कृष्ट ९ पल्योपम । अपरिगृहीता देवियों की स्थिति जघन्य १ पल्योपम झाझेरी, उत्कृष्ट ५५ पल्योपम ।

३ तीसरे देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य २ सागरोपम, उत्कृष्ट ७ सागरोपम ।

४ चौथे देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य २ सागरोपम झाझेरी, उत्कृष्ट ७ सागरोपम झाझेरी ।

५ पाँचवे देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य ७ सागरोपम उत्कृष्ट १० सागरोपम । नव लोकांतिक देवों की स्थिति जघन्य उत्कृष्ट ८ सागरोपम ❊ ।

६ छठे देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य १० सागरोपम, उत्कृष्ट १४ सागरोपम ।

७ सातवें देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य १४ सागरोपम, उत्कृष्ट १७ सागरोपम ।

८ आठवें देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य १७ सागरोपम, उत्कृष्ट १८ सागरोपम ।

९ नौवें देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य १८ सागरोपम, उत्कृष्ट १९ सागरोपम ।

१० दसवें देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य १९ सागरोपम, उत्कृष्ट २० सागरोपम ।

११ ग्यारहवें देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य २० सागरोपम, उत्कृष्ट २१ सागरोपम ।

❊ भगवती सूत्र शतक ६ उद्देशक ५, ठाणांग स्थान ८ सूत्र ३६ ।



१२ बारहवें देवलोक के देवों की स्थिति जघन्य २१ सागरोपम, उत्कृष्ट २२ सागरोपम ।

१३ पहले ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २२ सागरोपम, उत्कृष्ट २३ सागरोपम ।

१४ दूसरे ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २३ सागरोपम, उत्कृष्ट २४ सागरोपम ।

१५ तीसरे ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २४ सागरोपम, उत्कृष्ट २५ सागरोपम ।

१६ चौथे ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २५ सागरोपम, उत्कृष्ट २६ सागरोपम ।

१७ पाँचवें ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २६ सागरोपम, उत्कृष्ट २७ सागरोपम ।

१८ छठे ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २७ सागरोपम, उत्कृष्ट २८ सागरोपम ।

१९ सातवें ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २८ सागरोपम, उत्कृष्ट २९ सागरोपम ।

२० आठवें ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य २९ सागरोपम, उत्कृष्ट ३० सागरोपम ।

२१ नौवें ग्रैवेयक के देवों की स्थिति जघन्य ३० सागरोपम, उत्कृष्ट ३१ सागरोपम ।

२२ चार अनुत्तर विमान के देवों की स्थिति जघन्य ३१ सागरोपम, उत्कृष्ट ३३ सागरोपम ।

२३ सर्वार्थसिद्ध विमान के देवों की स्थिति अजघन्य अनुत्कृष्ट ३३ सागरोपम ।

२१. समोहया असमोहया मरण

नारकी और देव, दोनों प्रकार के मरण से मरते हैं ।

२२. च्यवन

नारकी और भवनपति देव से लगा कर आठवें देवलोक तक एक समय में जघन्य १-२-३ यावत् संख्यात, उत्कृष्ट असंख्यात च्यवे । नौवें देवलोक से लगा कर सर्वार्थसिद्ध विमान तक, एक समय में जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट संख्यात च्यवे ।

२३. गति आगति

पहली नारकी से लगा कर छठी नारकी तक दो गतियों से आवे और दो गतियों में जावे- तिर्यंच गति और मनुष्य गति । दण्डक की अपेक्षा दो दण्डकों से आवे और दो दण्डकों में जावे- २० वाँ तिर्यंच पंचेन्द्रिय और २१ वाँ मनुष्य का दण्डक । सातवीं नारकी में दो गतियों से आवे - तिर्यंच गति और मनुष्य गति से और एक तिर्यंच गति में जावे । दण्डक की अपेक्षा दो दण्डकों से आवे (२०-२१ वाँ दण्डक) और एक तिर्यंच पंचेन्द्रिय (२० वाँ दण्डक) में जावे । भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और पहिले दूसरे देवलोक के देव, दो गतियों से आवे और दो गतियों में जावे - तिर्यंच गति और मनुष्य गति । दण्डक की अपेक्षा दो दण्डक से आवे, तिर्यंच पंचेन्द्रिय से और मनुष्य से और पाँच दण्डक में जावे - पृथ्वीकाय, अप्काय, वनस्पतिकाय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य में । तीसरे देवलोक से लगा कर आठवें



१० सन्नी – पाँच स्थावर और असन्नी मनुष्य, असन्नी हैं, सन्नी नहीं ।

११ वेद – पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य में एक नपुंसक वेद पावे ।

१२ पर्याप्ति – पांच स्थावर में चार पर्याप्ति पावे – आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति और श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति । असन्नी मनुष्य चौथी पर्याप्ति का अपर्याप्ता रहते हुए ही मर जाता है ।

१३ दृष्टि – पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य में एक मिथ्यादृष्टि पावे ।

१४ दर्शन – पांच स्थावर में एक अचक्षुदर्शन होता है । असन्नी मनुष्य में – चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन–ये दो दर्शन हैं ।

१५ ज्ञान – पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य में ज्ञान (सम्यग्ज्ञान) नहीं होता, मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान – ये दो अज्ञान होते हैं ।

१६ योग – चार स्थावर–पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय वनस्पतिकाय और असन्नी मनुष्य–इन पांचों में योग पावे तीन – १. औदारिक–शरीर काययोग २. औदारिक–मिश्र शरीर काययोग और ३. कार्मण–शरीर काययोग । वायुकाय में योग पावे पांच – १. औदारिक–शरीर काययोग २. औदारिक–मिश्र शरीर काययोग ३. वैक्रिय–शरीर काययोग ४. वैक्रिय–मिश्र शरीर काययोग और ५. कार्मण–शरीर काययोग ।

१७ उपयोग – पाँच स्थावरों में उपयोग पावे तीन – मति



पावे चार - मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ।

१८ आहार - पांच स्थावर २८८ भेदों का आहार लेते हैं, जिसमें व्याघात हो, तो कदाचित् तीन दिशा का, कदाचित् चार दिशा का और कदाचित् पांच दिशा का । निर्व्याघात की अपेक्षा नियमा छह दिशा का । असन्नी मनुष्य आहार लेवे २८८ भेद का, जिसमें दिशा की अपेक्षा नियमा छह दिशा का ।

१९ उपपात - चार स्थावर में पांच स्थावर की अपेक्षा प्रति समय निरन्तर असंख्यात उपजे और त्रस की अपेक्षा एक समय में जघन्य १-२-३ जाव संख्यात, उत्कृष्ट असंख्यात उपजे । वनस्पतिकाय में चार स्थावर की अपेक्षा प्रति समय असंख्यात और वनस्पति की अपेक्षा अनन्त उपजे और त्रस की अपेक्षा एक समय में जघन्य १-२-३ जाव संख्यात, उत्कृष्ट असंख्यात उपजे । असन्नी मनुष्य में एक समय में जघन्य १-२-३ यावत् संख्यात, उत्कृष्ट असंख्यात उपजे ।

२० स्थिति - पृथ्वीकाय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट २२००० वर्ष की ।

	जघन्य	**उत्कृष्ट**
अप्काय	अन्तर्मुहूर्त्त	७००० वर्ष ।
तेउकाय	अन्तर्मुहूर्त्त	तीन अहोरात्रि ।
वायुकाय	अन्तर्मुहूर्त्त	३००० वर्ष ।
वनस्पतिकाय	अन्तर्मुहूर्त्त	१०००० वर्ष ।

असन्नी मनुष्य की स्थिति जघन्य और उत्कृष्ट अंतर्मुहूर्त्त की

२१ समोहया असमोहया मरण - पांच स्थावर और असन्नी मनुष्य, दोनों प्रकार के मरण मरते हैं ।

२२ च्यवन - जिस प्रकार उपपात द्वार (१९ वाँ) हैं, उसी प्रकार च्यवन द्वार है ।

२३ गति - पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में तीन गति से आवे - तिर्यंचगति, मनुष्य गति और देवगति से और दो गति में जावे - तिर्यंचगति में और मनुष्य गति में । दण्डक की अपेक्षा २३ दण्डक से आवे (१० भवनपति, ५ स्थावर, ३ विकलेन्द्रिय, १ तिर्यंच पंचेन्द्रिय, १ मनुष्य, १ वाणव्यन्तर, १ ज्योतिषी और १ वैमानिक से) और दस दण्डक में जावे (५ स्थावर, ३ विकलेन्द्रिय, १ तिर्यंच पंचेन्द्रिय और १ मनुष्य में) । तेउकाय और वायुकाय में दो गति से आवे (तिर्यंचगति और मनुष्य गति से) और एक तिर्यंचगति में जावे । दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक से आवे (औदारिक का दस दण्डक उपरोक्त) नव दण्डक में जावे (५ स्थावर, ३ विकलेन्द्रिय और १ तिर्यंच पंचेन्द्रिय में) और असन्नी मनुष्य दो गति से आवे - तिर्यंचगति और मनुष्य गति से और दो गति में जावे - तिर्यंचगति और मनुष्य गति में । दण्डक की अपेक्षा आठ दण्डक से आवे (१ पृथ्वीकाय, १ अप्काय और १ वनस्पतिकाय ३ विकलेन्द्रिय, तिर्यंचपंचेन्द्रिय और मनुष्य से) जावे दस दण्डक में उपरोक्त औदारिक में ।

२४ प्राण - पाँच स्थावर में प्राण पावे चार, (स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण, कायबल प्राण, श्वासोच्छ्वास बलप्राण और आयुष्य बलप्राण) और असन्नी मनुष्य में प्राण पावे कुछ ऊणा आठ (पांच इन्द्रिय बल प्राण, कायबल प्राण, श्वासोच्छ्वास बलप्राण और आयुष्य बल प्राण) ।

२५ योग - पाँच स्थावर और असन्नी मनुष्य में योग पावे एक - काया का ।



तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय

१ शरीर - तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंचपंचेन्द्रिय में शरीर पावे तीन - औदारिक, तैजस् और कार्मण ।

२ अवगाहना - बेइन्द्रिय की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट १२ योजन ।

तेइन्द्रिय की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट ३ गाउ (कोस) ।

चउरेन्द्रिय की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट ४ गाउ ।

असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पांच भेद -

जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प ।

जलचर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट १००० योजन की ।

स्थलचर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट प्रत्येक (पृथक्त्व) गाउ ।

खेचर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट प्रत्येक धनुष ।

उरपरिसर्प की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट प्रत्येक योजन ।

भुजपरिसर्प की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट प्रत्येक धनुष ।

३ संहनन - तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में एक सेवार्त्तक संहनन है ।



४ संस्थान - तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में संस्थान पावे - एक हुंडक ।

५ कषाय - तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में चारों ही कषाय पावे ।

६ संज्ञा - तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में चारों ही संज्ञा पावे ।

७ लेश्या - तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में तीन लेश्या पावे-कृष्ण लेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या।

८ इन्द्रिय - बेइन्द्रिय में इन्द्रिय पावे दो - रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय । तेइन्द्रिय में इन्द्रिय पावे तीन - घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय । चौइन्द्रिय में चार इन्द्रिय पावे - चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय । असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में पांच इन्द्रिय पावे - श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शनेन्द्रिय ।

९ समुद्घात - तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में समुद्घात पावे तीन - वेदनीय, कषाय और मारणांतिक ।

१० सन्नी - तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय- ये सभी सन्नी नहीं, असन्नी हैं ।

११ वेद - तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में एक नपुंसक वेद पावे ।

१२ पर्याप्ति - तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में पर्याप्ति पावे, पाँच - आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति और भाषा पर्याप्ति ।



१३ दृष्टि - तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में दो दृष्टि ※ - सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि ।

१४ दर्शन - बेइन्द्रिय और तेइन्द्रिय में एक अचक्षुदर्शन है । चौरिन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में दो दर्शन - चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ।

१५ ज्ञान - तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में दो ज्ञान - मतिज्ञान और श्रुतज्ञान । अज्ञान दो - मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान ।

१६ योग - तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में योग पावे चार - व्यवहार वचनयोग, औदारिक शरीर काययोग, औदारिक-मिश्र शरीर काययोग और कार्मण-शरीर काययोग ।

१७ उपयोग - बेइन्द्रिय और तेइन्द्रिय में पाँच उपयोग - दो ज्ञान, दो अज्ञान और एक अचक्षुदर्शन । चौइन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में छह उपयोग - दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन ।

१८ आहार - तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय छह दिशाओं से २८८ भेद का आहार लेते हैं ।

१९ उपपात - तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, में एक समय में जघन्य एक, दो, तीन यावत् संख्यात, उत्कृष्ट असंख्यात उत्पन्न होते हैं ।

※ तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त में ही २ दृष्टि पाती है तथा २ ज्ञान, २ अज्ञान, २ दर्शन, ये ६ उपयोग पाते हैं । पर्याप्त में तो एक मिथ्यादृष्टि ही मिलती है तथा ४ उपयोग (२ अज्ञान, २ दर्शन) ही मिलते हैं ।



२० स्थिति - बेइन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट १२ वर्ष । तेइन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट ४९ अहोरात्रि । चौइन्द्रिय की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट छह महीने ।

असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पाँच भेद -

जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प । जलचर की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व । स्थलचर की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट ८४ हजार वर्ष । खेचर की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट ७२ हजार वर्ष । उरपरिसर्प की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट ५३ हजार वर्ष । भुजपरिसर्प की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट ४२ हजार वर्ष ।

२१ समोहया असमोहया मरण - तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय दोनों प्रकार के मरण मरते हैं ।

२२ च्यवन - तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में एक समय में जघन्य १-२-३ यावत् संख्याता, उत्कृष्ट असंख्याता मरते हैं ।

२३ गति - तीन विकलेन्द्रिय में दो गति से आवे और दो गति में जावे - तिर्यंचगति और मनुष्यगति । दंडक की अपेक्षा दस दंडक से आवे और दस दंडक में जावे । दस दंडक औदारिक के हैं । असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में दो गति से आवे - तिर्यंचगति और मनुष्यगति से और चार गति में जावे - नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति में और दण्डक की अपेक्षा दस दण्डक से आवे - (दस दण्डक औदारिक का) और २२ दण्डक में जावे - (१ नारकी, १० भवनपति, १ वाणव्यन्तर, ५ स्थावर, ३ विकलेन्द्रिय, १ तिर्यंच पंचेन्द्रिय और १ मनुष्य) ।



२४ प्राण - बेइन्द्रिय में प्राण पावे छह - रसनेन्द्रिय बल प्राण, स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण, वचनबल प्राण, कायबल प्राण, श्वासोच्छ्वास बल प्राण और आयुष्य बल प्राण । तेइन्द्रिय में प्राण पावे सात - घ्राणेन्द्रिय बल प्राण, रसनेन्द्रिय बल प्राण, स्पर्शनेन्द्रिय बल प्राण, वचनबल प्राण, कायबल प्राण, श्वासोच्छ्वास बल प्राण और आयुष्य बल प्राण । चौरिन्द्रिय में प्राण पावे आठ - चक्षुरिन्द्रिय बल प्राण और सात पूर्वोक्त । असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में प्राण पावे नव - श्रोत्रेन्द्रिय बल प्राण और आठ पूर्वोक्त ।

२५ योग - तीन विकलेन्द्रिय और असन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में योग पावे दो - वचन योग और काययोग ।

सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय

१ शरीर - सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में शरीर ˘ावे चार - औदारिक, वैक्रिय, तैजस् और कार्मण ।

२ अवगाहना - सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पाँच भेद - जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प ।

जलचर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट १००० योजन ।

स्थलचर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट ६ गाउ ।

खेचर की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट प्रत्येक धनुष ।

उरपरिसर्प की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट १००० योजन ।



भुजपरिसर्प की अवगाहना जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट प्रत्येक गाउ ।

सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय वैक्रिय शरीर करे, तो अवगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग, उत्कृष्ट पृथक् सौ (जघन्य २०० उत्कृष्ट ९००) योजन ।

३ संहनन - सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में संहनन पावे छहों ।

४ संस्थान - सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में संस्थान पावे छहों ।

५ कषाय - सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में चारों कषाय पाई जाती है।

६ संज्ञा - सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में चारों ही संज्ञा पाई जाती है।

७ लेश्या - सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में छहों लेश्या पाई जाती है।

८ इंन्द्रिय - सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में पाँचों इन्द्रियाँ पाई जाती है ।

९ समुद्घात - सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में समुद्घात पावे पाँच - वेदनीय, कषाय, मारणांतिक, वैक्रिय और तैजस् ।

१० सन्नी - सन्नी पंचेन्द्रिय सन्नी है, असन्नी नहीं ।

११ वेद - सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में तीनों ही वेद पाये जाते हैं।

१२ पर्याप्ति - सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में छहों पर्याप्ति पाई जाती है ।

१३ दृष्टि - सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में तीनों ही दृष्टि पाई जाती है ।

१४ दर्शन - सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में दर्शन पावे तीन - चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन ।

१५ ज्ञान - सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में ज्ञान पावे तीन - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान । **अज्ञान** - सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में तीनों ही अज्ञान पावे ।



१६ योग - सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में योग पावे १३ - चार मन के, ४ वचन के और ५ काया के - औदारिक शरीर काययोग, औदारिक मिश्र-शरीर काययोग, वैक्रिय-शरीर काययोग, वैक्रिय मिश्र-शरीर काययोग और कार्मण शरीर काययोग ।

१७ उपयोग - सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में उपयोग पावे नव - ३ ज्ञान, ३ अज्ञान और ३ दर्शन ।

१८ आहार - सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय २८८ भेद का आहार लेते हैं, जिसमें दिशा की अपेक्षा नियम से छह दिशा से ।

१९ उपपात - सभी तिर्यंच पंचेन्द्रिय एक समय में जघन्य १-२-३ यावत् संख्यात उत्कृष्ट असंख्यात उपजे ।

२० स्थिति - सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पाँच भेद - जलचर, स्थलचर, खेचर, उरपरिसर्प और भुजपरिसर्प ।

जलचर की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व।

स्थलचर की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट तीन पल्योपम।

खेचर की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवें भाग ।

उरपरिसर्प की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व ।

भुजपरिसर्प की स्थिति जघन्य अंतर्मुहूर्त्त, उत्कृष्ट एक करोड़ पूर्व ।

२१ समोहया असमोहया मरण - सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में दोनों प्रकार के मरण पावे ।

२२ च्यवन - सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय एक समय में जघन्य १-२-३ यावत् संख्यात, उत्कृष्ट असंख्यात मरते हैं ।

२३ गति – चारों गति और चौबीस दंडक से आते है और चारों गति चौबीस दंडक में जाते हैं ।

२४ प्राण – सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में प्राण पावे दसों ही ।

२५ योग – सन्नी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में योग पावे तीनों ही ।

गर्भज मनुष्य

१ शरीर – पांचों ही ।

२ अवगाहना – जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग, उत्कृष्ट तीन गाउ । काल के अनुसार अवसर्पिणी काल में गर्भज मनुष्यों की उत्कृष्ट अवगाहना इस प्रकार है –

पहले आरे के प्रारंभ में	तीन गाउ ।
पहला पूर्ण होते और दूसरे के प्रारंभ में	दो गाउ ।
दूसरा पूर्ण होते और तीसरे के प्रारंभ में	एक गाउ ।
तीसरा पूर्ण होते और चौथे के प्रारंभ में	५०० धनुष ।
चौथा उतरते और पाँचवां लगते	७ हाथ ।
पाँचवाँ उतरते और छठा लगते	२ हाथ * ।
छठा आरा उतरते	एक हाथ ।

* जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति द्वितीय वक्षस्कार में अवसर्पिणी के पाँचवें आरे में बहुत हाथ की अवगाहना बताई है और छठे आरे के अंत तक उत्कृष्ट एक हाथ की अवगाहना बताई है । इन आधारों से पाँचवें आरे के उतरते व छठा आरा लगते २ हाथ की और छठा आरा उतरते एक हाथ की अवगाहना मनुष्य की समझी जाती है । जैन धर्म का मौलिक इतिहास (पूज्य आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. द्वारा रचित) भाग १ पृष्ठ ६८५ तृतीय संस्करण में पाँचवां आरा उतरते व छठा लगते २ हाथ तथा इसी के पृष्ठ ६८७ में छठा आरा उतरते १ हाथ की अवगाहना मनुष्य की बताई है ।



यह उत्कृष्ट अवगाहना है । जघन्य अवगाहना उत्पत्ति के समय सभी की अंगुल के असंख्यातवें भाग है । पहले से तीसरे आरे तक युगलिकों की जघन्य अवगाहना, उत्कृष्ट से देश ऊणी (कुछ कम) होती है और उत्कृष्ट अवगाहना पूरी होती है ।

उत्सर्पिणी काल की अवगाहना का क्रम इससे उल्टा होता है । यदि मनुष्य वैक्रिय-शरीर करे, तो अवगाहना जघन्य अंगुल के संख्यातवें भाग और उत्कृष्ट लाख योजन झाझेरी ।

३ **संहनन** - छहों ।

४ **संस्थान** - छहों ।

५ **कषाय** - चारों और अकषायी होते हैं ।

६ **संज्ञा** - चारों और नो-संज्ञोपयुक्त भी होते हैं ।

७ **लेश्या** - छहों और अलेशी भी होते हैं ।

८ **इन्द्रिय** - पाँचों और अनिन्द्रिय भी ।

९ **समुद्घात** - सातों ही ।

१० **सन्नी** - सन्नी हैं, असन्नी नहीं और नो-सन्नी नो-असन्नी भी ।

११ **वेद** - तीनों और अवेदी भी ।

१२ **पर्याप्ति** - छहों ।

१३ **दृष्टि** - तीनों ।

१४ **दर्शन** - चारों ।

१५ **ज्ञान** - पाँचों ज्ञान और तीनों अज्ञान ।

१६ **योग** - पन्द्रह और अयोगी भी ।

१७ **उपयोग** - बारह-सभी ।

१८ **आहार** - छहों दिशा से २८८ बोलों का आहार लेते हैं और अनाहारक भी होते हैं ।



१९ उपपात - जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट संख्यात ।

२० स्थिति - जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त उत्कृष्ट तीन पल्योपम ।

काल की अपेक्षा अवसर्पिणी काल में -

पहले आरे के प्रारंभ में ३ पल्योपम ।

पहला उतरते और दूसरा लगते २ पल्योपम ।

दूसरा उतरते और तीसरा लगते १ पल्योपम ।

तीसरा उतरते और चौथा लगते १ करोड़ पूर्व ।

चौथा उतरते, पाँचवां लगते एक सौ वर्ष झाझेरी

पाँचवां उतरते और छठा लगते २० वर्ष ।

छठा आरा उतरते १६ वर्ष ।

यह उत्कृष्ट स्थिति बतलाई है । तीसरे आरे तक के मनुष्यों की जघन्य स्थिति उत्कृष्ट से देश-ऊणी होती है शेष आरों में जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की । उत्सर्पिणी काल में इससे उलटी होती है ।

२१ समोहया असमोहया मरण - दोनों प्रकार का मरण ।

२२ च्यवन - जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट संख्यात ।

२३ गति आगति - आगति - चारों गति और २२ दंडक से (तेउकाय वायुकाय को छोड़कर) गति - चारों और सिद्ध गति तथा दंडक २४ में ।

२४ प्राण - दस ही ।

२५ योग - तीनों और अयोगी भी ।

युगलिक मनुष्य

युगलिक मनुष्यों के भेद - ५ हेमवत ५ हैरण्यवत ५ हरिवास ५ रम्यकवास ५ देवकुरु ५ उत्तरकुरु और ५६ अन्तर्द्वीप के । ये कुल ८६ भेद ।



१ शरीर - तीन - १. औदारिक, २. तैजस् और ३. कार्मण।

२ अवगाहना - हेमवत और हैरण्यवत में एक गाउ ।
हरिवास और रम्यक्वास में दो गाउ ।
देवकुरु और उत्तरकुरु में तीन गाउ ।
अन्तर्द्वीप में-आठ सौ धनुष ।

इनमें जघन्य देशऊणी ※ और उत्कृष्ट परिपूर्ण होती है ।

३ संहनन - वज्रऋषभनाराच संहनन ।

४ संस्थान - समचतुरस्त्र संस्थान ।

५ कषाय - चारों ही ।

६ संज्ञा - चारों ही ।

७ लेश्या - चार - कृष्ण, नील, कापोत और तेजो लेश्या ।

८ इन्द्रिय - पाँचों ।

९ समुद्घात - तीन - वेदनीय, कषाय और मारणांतिक ।

१० सन्नी - सन्नी ही हैं, असन्नी नहीं ।

११ वेद - दो - स्त्री वेद और पुरुष वेद ।

१२ पर्याप्ति - छह ।

१३ दृष्टि - ३० अकर्मभूमि में दो दृष्टि - १ सम्यगृदृष्टि और २ मिथ्यादृष्टि और ५६ अन्तर्द्वीपों में एक मिथ्यादृष्टि ।

१४ दर्शन - दो चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन ।

१५ ज्ञान - ३० अकर्मभूमि में दो ज्ञान - मतिज्ञान और श्रुतज्ञान तथा दो अज्ञान - मतिअज्ञान व श्रुतअज्ञान ।५६ अन्तर्द्वीपों में दो अज्ञान - मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान ।

※ जन्म की अपेक्षा तो जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग ही होती है ।



१६ योग - ग्यारह - ४ मन के ४ वचन के और ३ काया के - १ औदारिक काययोग २ औदारिक मिश्र काययोग और ३ कार्मण काययोग ।

१७ उपयोग - ३० अकर्मभूमि में छह - दो ज्ञान, दो अज्ञान और दो दर्शन । ५६ अन्तर्द्वीपों में उपयोग चार - दो अज्ञान और दो दर्शन ।

१८ आहार - सभी युगलिक छहों दिशा से २८८ बोलों का आहार करते हैं ।

१९ उपपात - जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होते हैं ।

२० स्थिति -

५ हेमवत ५ हैरण्यवत की स्थिति एक पल्योपम ।

५ हरिवास ५ रम्यक्वास की स्थिति दो पल्योपम ।

५ देवकुरु ५ उत्तरकुरु की स्थिति तीन पल्योपम ।

५६ अन्तर्द्वीप की स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग ।

इनमें जघन्य स्थिति कुछ कम होती है और उत्कृष्ट पूर्ण होती है ।

२१ समोहया असमोहया मरण - दोनों प्रकार से मृत्यु होती है ।

२२ च्यवन - जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट संख्यात ।

२३ गति आगति - आगति २ - तिर्यंच और मनुष्य-गति से ।

गति - एक देवगति में ।



दंडक की अपेक्षा-तीस अकर्मभूमि की आगति - दो दंडक से मनुष्य और तिर्यंच से । गति दण्डक १३ में - १० भवनपति १ व्यन्तर १ ज्योतिषी और १ वैमानिक में ।

छप्पन अन्तर्द्वीपों में आगति उपरोक्त दण्डक २ से और गति दंडक ११ में - १० भवनपति और १ व्यन्तर में ।

२४ प्राण - दस ।

२५ योग - तीनों ।

सिद्ध भगवान्

१ शरीर - सिद्ध भगवान् के शरीर नहीं, अशरीरी है ।

२ अवगाहना - आत्मप्रदेशों की अवगाहना जघन्य एक हाथ आठ अंगुल, मध्यम चार हाथ और सोलह अंगुल, उत्कृष्ट ३३३ धनुष और ३२ अंगुल ।

३ संहनन - संहनन नहीं ।

४ संस्थान - कोई संस्थान नहीं ।

५ कषाय - अकषायी हैं ।

६ संज्ञा - संज्ञा नहीं, नोसंज्ञोपयुक्त हैं ।

७ लेश्या - लेश्या नहीं, अलेशी हैं ।

८ इन्द्रिय - इन्द्रिय नहीं, अनिन्द्रिय हैं ।

९ समुद्घात - समुद्घात नहीं ।

१० सन्नी - सन्नी और असन्नी नहीं, नोसन्नी नोअसन्नी हैं ।

११ वेद - वेद नहीं, अवेदी हैं ।

१२ पर्याप्ति - पर्याप्ति और अपर्याप्ति नहीं, नोपर्याप्त नोअपर्याप्त हैं ।

१३ दृष्टि - एक सम्यग्दृष्टि ।

१४ दर्शन - एक केवलदर्शन ।

१५ ज्ञान - एक केवलज्ञान पावे, अज्ञान नहीं ।

१६ योग - योग नहीं, अयोगी हैं ।

१७ उपयोग - दो उपयोग - केवलज्ञान और केवलदर्शन ।

१८ आहार - आहारक नहीं, अनाहारक हैं ।

१९ उपपात - सिद्ध भगवान् एक समय में जघन्य १-२-३ उत्कृष्ट १०८ सिद्ध होवें ।

२० स्थिति - एक सिद्ध भगवान् की अपेक्षा सादि-अनन्त और सभी सिद्ध भगवंतों की अपेक्षा अनादि-अनन्त ।

२१ समोहया असमोहया मरण - सिद्ध भगवान् में मरण नहीं ।

२२ च्यवन - सिद्ध भगवान् में च्यवन नहीं ।

२३ गति-आगति - आगति एक मनुष्यगति और एक दण्डक से । गति नहीं ।

२४ प्राण - द्रव्य-प्राण नहीं और भाव प्राण ४ हैं ।

(ज्ञान, दर्शन, सुख और आत्म-शक्ति) ।

२५ योग - सिद्ध भगवान् में योग नहीं, अयोगी हैं ।

।। लघुदण्डक समाप्त ।।

महादण्डक

(अठाणु बोल का बासठिया)

प्रज्ञापना सूत्र पद ३ के महादण्डक में ९८ बोल की अल्पाबहुत्व, इस प्रकार है । बासठिया इससे भिन्न हैं ।

बोल	जीव०	गुण०	योग	उप०	ले.
१ सबसे थोड़े गर्भज मनुष्य	२	१४	१५	१२	६
२ इनसे मनुष्यनी संख्यात गुणी	२	१४	१३	१२	६
३ बादर तेउकाय पर्याप्त असंख्य गुण	१	१	१	३	३
४ पांच अनुत्तर विमान के देव असंख्यात गुण	२	१	११	६	१
५ ग्रैवेयक की ऊपर की त्रिक के देव संख्यात गुण	२	४*	११	९	१
६ मध्यम त्रिक के देव संख्यात गुण	२	४	११	९	१
७ नीचे की त्रिक के देव सं. गुण	२	४	११	९	१
८ बारहवें देवलोक के देव सं. गुण	२	४	११	९	१
९ ग्यारहवें देवलोक के देव सं. गुण	२	४	११	९	१
१० दसवें देवलोक के देव सं. गुण	२	४	११	९	१
११ नौवें देवलोक के देव सं. गुण	२	४	११	९	१

* यहां मतभेद है । थोकड़े की पुस्तकों में ग्रैवेयक में दो ही दृष्टि मानी, किंतु भगवती सूत्र श. १३ उ. २ तथा श. २४ उ. २१ में तीनों दृष्टि मानी है । इसलिए गुणस्थान चार मानना प्रामाणिक है - डोशी ।



	जीवभेद	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
१२ सातवीं नरक के नेरइये असं. गुण	२	४	११	९	१
१३ छठी नरक के नेरइये असं. गुण	२	४	११	९	१
१४ आठवें देवलोक के देव असं.गुण	२	४	११	९	१
१५ सातवें देवलोक के देव असं. गुण	२	४	११	९	१
१६ पाँचवीं नरक के नेरइये असं. गुण	२	४	११	९	२
१७ छठे देवलोक के देव असं. गुण	२	४	११	९	१
१८ चौथी नरक के नेरइये असं. गुण	२	४	११	९	१
१९ पाँचवें देवलोक के देव असं. गुण	२	४	११	९	१
२० तीसरी नरक के नेरइये असं. गुण	२	४	११	९	२
२१ चौथे देवलोक के देव असं. गुण	२	४	११	९	१
२२ तीसरे देवलोक के देव असं. गुण	२	४	११	९	१
२३ दूसरी नरक के नेरइये असं. गुण	२	४	११	९	१
२४ संमूर्च्छिम मनुष्य असं. गुण	१	१	३	४	३
२५ दूसरे देवलोक के देव असं. गुण	२	४	११	९	१
२६ दूसरे देवलोक की देवी सं. गुणी	२	४	११	९	१
२७ पहले देवलोक के देव सं. गुण	२	४	११	९	१
२८ पहले देवलोक की देवी सं. गुणी	२	४	११	९	१
२९ भवनपति देव असंख्यात गुण	३	४	११	९	४
३० भवनपति देवी संख्यात गुणी	२	४	११	९	४
३१ पहली नरक के नेरइये असं. गुण	३	४	११	९	१
३२ खेचर तिर्यंच पुरुष असं. गुण	२	५	१३	९	६
३३ खेचर स्त्री संख्यात गुणी	२	५	१३	९	६
३४ थलचर पुरुष संख्यात गुण	२	५	१३	९	६



	जी०	गुण०	योग	उ०	ले०
३५ थलचर स्त्री संख्यात गुणी	२	५	१३	९	६
३६ जलचर पुरुष संख्यात गुण	२	५	१३	९	६
३७ जलचर स्त्री संख्यात गुणी	२	५	१३	९	६
३८ व्यन्तर देव संख्यात गुण	३	४	११	९	४
३९ व्यन्तर देवी संख्यात गुणी	२	४	११	९	४
४० ज्योतिषी देव संख्यात गुण	२	४	११	९	१
४१ ज्योतिषी देवी संख्यात गुणी	२	४	११	९	१
४२ खेचर नपुंसक(गर्भज)सं. गु.	२	५	१३	९	६
४३ थलचर नपुंसक(गर्भज)सं. गुण	२	५	१३	९	६
४४ जलचर नपुंसक(गर्भज)सं. गुण	२	५	१३	९	६
४५ चौरिंद्रिय के पर्याप्त संख्यात गुण	१	१	२	४	३
४६ पंचेन्द्रिय के पर्याप्त विशेषाधिक	२	१२	१४	१०	६
४७ बेइंद्रिय के पर्याप्त विशेषाधिक	१	१	२	३	३
४८ तेइंद्रिय के पर्याप्त विशेषाधिक	१	१	२	३	३
४९ पंचेंद्रिय के अपर्याप्त असं. गुण	२	३	५	९	६
५० चौरेंद्रिय के अपर्याप्त विशेषाधिक	१	२	३	६	३
५१ तेइंद्रिय के अपर्याप्त विशेषाधिक	१	२	३	५	३
५२ बेइंद्रिय के अपर्याप्त विशेषाधिक	१	२	३	५	३
५३ प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पतिकाय के पर्याप्त असंख्यात गुण	१	१	१	३	३
५४ बादर निगोद के पर्याप्त असं. गुण	१	१	१	३	३
५५ बादर पृथ्वीकाय के पर्या.असं. गुण	१	१	१	३	३
५६ बादर अप्काय के पर्या. असं. गुण	१	१	१	३	३



	जी०	गुण०	योग	उ०	ले०
५७ बादर वाउकाय के पर्या. असं. गुण	१	१	४	३	३
५८ बादर तेउकाय के अपर्या. असं. गुण	१	१	३	३	३
५९ प्रत्येक शरीरी बादर वनस्पतिकाय के अपर्याप्त असंख्यात गुण	१	१	३	३	४
६० बादर निगोद के अपर्या. असं. गुण	१	१	३	३	३
६१ बादर पृथ्वीकाय के अप:असं. गुण	१	१	३	३	४
६२ बादर अप्काय के अप. असं. गुण	१	१	३	३	४
६३ बादर वायुकाय के अप. असं. गुण	१	१	३	३	३
६४ सूक्ष्म तेउकाय के अप. असं. गुण	१	१	३	३	३
६५ सूक्ष्म पृथ्वीकाय के अप. विशेषा.	१	१	३	३	३
६६ सूक्ष्म अप्काय के अपर्या. विशेषा.	१	१	३	३	३
६७ सूक्ष्म वायुकाय के अपर्या. विशेषा.	१	१	३	३	३
६८ सूक्ष्म तेउकाय के पर्याप्त सं. गुण	१	१	१	३	३
६९ सूक्ष्म पृथ्वीकाय के पर्याप्त विशेषा.	१	१	१	३	३
७० सूक्ष्म अप्काय के पर्याप्त विशेषा.	१	१	१	३	३
७१ सूक्ष्म वायुकाय के पर्याप्त विशेषा.	१	१	१	३	३
७२ सूक्ष्म निगोद के अपर्याप्त असं. गु.	१	१	३	३	३
७३ सूक्ष्म निगोद के पर्याप्त सं. गुण 卐	१	१	१	३	३
७४ अभव्य जीव अनंत गुण	१४	१	१३	६	६
७५ प्रतिपतित समदृष्टि अनंत गुण	१४	२⁂	१३	६	६
७६ सिद्ध भगवंत अनंत गुण	०	०	०	२	०

卐 बोल क्रं. ५४, ६० और ७२, ७३ निगोद शरीर की अपेक्षा समझना।

⁂ प्रतिपतित समदृष्टि में पहला और तीसरा, इन दो गुणस्थानों की

	जी०	गुण०	योग	उ०	ले०
७७ बादर वनस्पतिकाय के पर्याप्त अनंत गुण	१	१	१	३	३
७८ बादर के पर्याप्त विशेषाधिक	६	१४	१५	१२	६
७९ बादर वनस्पतिकाय के अपर्याप्त असंख्यात गुण	१	१	३	३	४
८० बादर के अपर्याप्त विशेषाधिक	६	३	५	९	६
८१ समुच्चय बादर विशेषाधिक	१२	१४	१५	१२	६
८२ सूक्ष्म वनस्पतिकाय के अपर्याप्त असंख्यात गुण	१	१	३	३	३
८३ सूक्ष्म के अपर्याप्त विशेषाधिक	१	१	३	३	३
८४ सूक्ष्म वनस्पतिकाय पर्याप्त संख्यात गुण	१	१	१	३	३
८५ सूक्ष्म के पर्याप्त विशेषाधिक	१	१	१	३	३
८६ समुच्चय सूक्ष्म विशेषाधिक	२	१	३	३	३
८७ भवसिद्धिया विशेषाधिक	१४	१४	१५	१२	६
८८ निगोदिया जीव विशेषाधिक	४	१	३	३	३
८९ वनस्पतिकाय के जीव विशेषाधिक	४	१	३	३	४
९० एकेन्द्रिय जीव विशेषाधिक	४	१	५	३	४
९१ तिर्यंच जीव विशेषाधिक	१४	५	१३	९	६
९२ मिथ्यादृष्टि जीव विशेषाधिक	१४	१	१३	६	६
९३ अव्रती जीव विशेषाधिक	१४	४	१३	९	६
९४ सकषायी जीव विशेषाधिक	१४	१०	१५	१०	६
९५ छद्मस्थ जीव विशेषाधिक	१४	१२	१५	१०	६
९६ सयोगी जीव विशेषाधिक	१४	१३	१५	१२	६



	जी०	गुण०	योग	उ०	ले०
१७ संसारी जीव विशेषाधिक	१४	१४	१५	१२	६
१८ समुच्चय जीव विशेषाधिक	१४	१४	१५	१२	६

अठाणु बोल पर ४५ द्वार

१ गति द्वार

इन अठाणु बोल में से -

१. एकान्त नरक गति में बोल पावे ७ (१२, १३, १६, १८, २०, २३, ३१) ।

२. एकांत तिर्यंच गति में बोल पावे ४८ - ३, ३२ से ३७, ४२ से ४५, ४७, ४८, ५० से ७३, ७७, ७९, ८२ से ८६, ८८ से ९१ ।

३. एकांत मनुष्य गति में बोल पावे ३ - १, २, २४ ।

४. एकान्त देव गति में बोल पावे २४ - ४ से ११, १४, १५, १७, १९, २१, २२, २५ से ३०, ३८ से ४१ ।

५. समुच्चय नारकी, तिर्यंच, मनुष्य और देव-इन चारों गति में बोल पावे १५ - ४६, ४९, ७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ९२ से ९८ ।

६. सिद्ध गति में बोल पावे १ - ७६ ।

२ इंद्रिय द्वार

१. एकांत एकेन्द्रिय में बोल पावे ३२ - ३, ५३ से ७३, ७७, ७९, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९० ।

२. एकांत बेइंद्रिय में बोल पावे २ - ४७, ५२ ।

३. एकांत तेइन्द्रिय में बोल पावे २ - ४८, ५१ ।

४. एकांत चौरिन्द्रिय में बोल पावे २ - ४५, ५० ।

५. एकांत पंचेन्द्रिय में बोल पावे ४५ - १, २, ४ से ४४, ४६, ४९ ।

६. समुच्चय एकेन्द्रिय, बेइंद्रिय, तेइंद्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय, इन पांचों इन्द्रिय (सइन्द्रिय) में बोल पावे १४ - ७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ९१ से ९८ ।

७. अनिन्द्रिय में बोल पावे १ - ७६ ।

३ काय द्वार

१. एकांत पृथ्वीकाय में बोल पावे ४-५५, ६१, ६५, ६९ ।

२. एकांत अप्काय में बोल पावे ४ - ५६, ६२, ६६, ७० ।

३. एकांत तेउकाय में बोल पावे ४ - ३, ५८, ६४, ६८ ।

४. एकांत वायुकाय में बोल पावे ४ -५७, ६३, ६७, ७१ ।

५. एकांत वनस्पतिकाय में बोल पावे १२ - ५३, ५४, ५९, ६०, ७२, ७३, ७७, ७९, ८२, ८४, ८८, ८९ ।

६. समुच्चय पाँच स्थावर में बोल पावे ४ - ८३, ८५, ८६, ९० ।

७. एकांत त्रसकाय में बोल पावे ५१ - १, २, ४ से ५२ ।

८. समुच्चय पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय, इन छहकाय (सकाय) में बोल पावे १४ - ७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ९१ से ९८ ।

९. अकाय में बोल पावे १ - ७६ ।



४ योग द्वार

१. एकांत काययोग में बोल पावे ३८ - ३, २४, ४९ से ७३, ७७, ७९, ८०, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९० ।

२. काययोग और वचनयोग, इन दोनों योगों में बोल पावे ३ - ४५, ४७, ४८ ।

३. समुच्चय, मन वचन और काय, इन तीनों योगों में बोल पावे ५६ - १, २, ४ से २३, २५ से ४४, ४६, ७४, ७५, ७८, ८१, ८७, ९१ से ९८ ।

४. अयोगी में बोल पावे १ - ७६ ।

५ वेद द्वार

१. एकांत स्त्रीवेद में बोल पावे ९ - २, २६, २८, ३०, ३३, ३५, ३७, ३९, ४१ ।

२. एकांत पुरुषवेद में बोल पावे २२ - ४ से ११, १४, १५, १७, १९, २१, २२, २५, २७, २९, ३२, ३४, ३६, ३८, ४० ।

३. पुरुषवेद और नपुंसक वेद, इन दोनों वेदों में बोल पावे १ - पहला ।

४. एकांत नपुंसक वेद में बोल पावे ४९ - ३, १२, १३, १६, १८, २०, २३, २४, ३१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४७, ४८, ५० से ७३, ७७, ७९, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९०।

५. स्त्री, पुरुष और नपुंसक, इन तीनों वेदों में बोल पावे १६- ४६, ४९, ७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ९१ से ९८ ।

६. अवेदी में बोल पावे १ - ७६ ।

६ कषाय द्वार

१. क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चारों कषायों में बोल पावे ९७ - १ से ७५, ७७ से ९८ ।

२. एकांत अकषायी में बोल पावे १- ७६ ।

७ लेश्या द्वार

१. एकांत कृष्णलेश्या में बोल पावे २ - १२, १३ ।

२. एकांत नील़लेश्या में बोल पावे १ - १८ ।

३. एकांत कापोतलेश्या में बोल पावे २ - २३, ३१ ।

४. एकांत तेजोलेश्या में बोल पावे ६-२५ से २८, ४०, ४१।

५. एकांत पद्मलेश्या में बोल पावे ३ - १९, २१, २२ ।

६. एकांत शुक्ललेश्या में बोल पावे ११ - ४ से ११, १४, १५, १७ ।

७. कृष्ण और नील, इन दो लेश्याओं में बोल पावे १ - १६ ।

८. नील और कापोत, इन दो लेश्याओं में बोल पावे १ - २० ।

९. कृष्ण, नील और कापोत, इन तीन लेश्याओं में बोल पावे ३३ - ३, २४, ४५, ४७, ४८, ५० से ५८, ६०, ६३ से ७३, ७७, ८२ से ८६, ८८ ।

१०. कृष्ण, नील, कापोत और तेजो - इन चारों लेश्याओं में बोल पावे १० - २९, ३०, ३८, ३९, ५९, ६१, ६२, ७९, ८९, ९० ।

११. समुच्चय कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल, इन छहों लेश्या में बोल पावे २७ – १, २, ३२ से ३७, ४२, ४३, ४४, ४६, ४९, ७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ९१ से ९८ ।

१२. एकांत अलेशी में बोल पावे १ – ७६ ।

८ दृष्टि द्वार

१. एकांत सम्यग्दृष्टि में बोल पावे २ – ४, ७६ ।

२. एकांत मिथ्यादृष्टि में बोल पावे ३९ – ३, २४, ४५, ४७, ४८, ५३ से ७३, ७४, ७५, ७७, ७९, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९०, ९२ ।

३. सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि, इन दोनों दृष्टि में बोल पावे ५– ४९, ५०, ५१, ५२, ८० ।

४. सम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्या (मिश्र) दृष्टि इन तीनों दृष्टि में बोल पावे ५२ – १, २, ५ से २३, २५ से ४४, ४६, ७८, ८१, ८७, ९१, ९३ से ९८ ।

९ ज्ञान द्वार

१. एकांत मतिज्ञान और श्रुतज्ञान, इन दोनों में बोल पावे ३ – ५०, ५१, ५२ ।

२. मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान, इन तीनों ज्ञानों में बोल पावे ४४ – ४ से २३, २५ से ४४, ४९, ८०, ९१, ९३ ।

३. मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यवज्ञान, इन चारों ज्ञानों में बोल पावे ३- ४६, ९४, ९५ ।
४. मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान, इन पांचों ज्ञानों में बोल पावे ८ - १, २, ७८, ८१, ८७, ९६, ९७, ९८ ।
५. एकांत केवलज्ञान में बोल पावे १ - ७६ ।
६. एकांत मतिअज्ञान और श्रुतअज्ञान - इन दोनों अज्ञान में बोल पावे ३६ - ३, २४, ४५, ४७, ४८, ५३ से ७३, ७७, ७९, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९० ।
७. समुच्चय मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान - इन दो अज्ञानों में बोल पावे ३९ - ३६ उपरोक्त तथा ५०, ५१, ५२ ।
८. समुच्चय मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और विभंगज्ञान, इन तीनों में बोल पावे ५७ - १, २, ५ से २३, २५ से ४४, ४६, ४९, ७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ९१ से ९८ ।

१० दर्शन द्वार

१. एकांत अचक्षुदर्शन में बोल पावे ३६ - ३, ४७, ४८, ५१ से ७३, ७७, ७९, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९० ।
२. एकांत चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन, इन दो दर्शनों में बोल पावे ३ - २४, ४५, ५० ।
३. चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन, इन तीन दर्शनों में बोल पावे ५० - ४ से २३, २५ से ४४, ४६, ४९, ७४, ७५, ८०, ९१ से ९५ ।



४. चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन, इन चारों दर्शनों में बोल पावे ८ - १, २, ७८, ८१, ८७, ९६, ९७, ९८ ।

५. एक मात्र केवलदर्शन में बोल पावे १ - ७६ ।

११ संयति द्वार

१. संयति, असंयति और संयतासंयति, इन तीनों में बोल पावे ११ - १, २, ४६, ७८, ८१, ८७, ९४ से ९८ ।

२. असंयति और संयतासंयति - इन दोनों में बोल पावे १० - ३२ से ३७, ४२ से ४४, ९१ ।

३. एकांत असंयति में बोल पावे ७६ - ३ से ३१, २९, ३८ से ४१, ४५, ४७ से ७५, ७७, ७९, ८०, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९०, ९२, ९३ ।

४. नोसंयति नोअसंयति नोसंयतासंयति में बोल पावे १ - ७६ ।

१२ उपयोग द्वार

१. एकांत मतिअज्ञान श्रुतअज्ञान और अचक्षुदर्शन में बोल पावे ३४ - ३, ४७, ४८, ५३ से ७३, ७७, ७९, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९० ।

२. मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, चक्षुदर्शन और अचक्षुदर्शन - इन चार उपयोगों में बोल पावे २ - २४, ४५ ।

३. मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान और अचक्षुदर्शन इन पांचों उपयोगों में बोल पावे २ - ५१, ५२ ।

४. मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन - इन छह उपयोगों में बोल पावे १ - ५० ।
५. तीन ज्ञान और तीन दर्शन - इन छह उपयोगों में बोल पावे १ - ४ ।
६. तीन अज्ञान और तीन दर्शन - इन छह उपयोगों में बोल पावे ३ - ७४, ७५, ९२ ।
७. तीन ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शन - इन नौ उपयोगों में बोल पावे ४३ - ५ से २३, २५ से ४४, ४९, ८०, ९१, ९३ ।
८. चार ज्ञान, तीन अज्ञान और तीन दर्शन - इन दस उपयोगों में बोल पावे ३ - ४६, ९४, ९५ ।
९. पाँच ज्ञान, तीन अज्ञान और चार दर्शन - इन बारह उपयोगों में बोल पावे ८ - १, २, ७८, ८१, ८७, ९६, ९७, ९८ ।
१०. केवलज्ञान और केवलदर्शन - इन दो उपयोगों में बोल पावे १ - ७६ ।
११. समुच्चय साकारोपयुक्त और अनाकारोपयुक्त - इन दो उपयोगों में बोल पावे ९८ ही ।

१३ आहारक द्वार

१. एकांत आहारक में बोल पावे १८ - ३, ४५ से ४८, ५३ से ५७, ६८ से ७१, ७३, ७७, ८४, ८५ ।
२. एकांत अनाहारक में बोल पावे १ - ७६ ।



३. आहारक तथा अनाहारक – इन दोनों में बोल पा
७९ – १, २, ४ से ४४, ४९ से ५२, ५८ से ६७, ७
७४, ७५, ७८ से ८३, ८६ से ९८ ।

१४ भाषक द्वार

१. एकांत भाषक में बोल पावे ४ – ४५ से ४८ ।
२. एकांत अभाषक में बोल पावे ३९ – ३, २४, ४९
७३, ७६, ७७, ७९, ८०, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९० ।
३. भाषक और अभाषक, इन दोनों में बोल पावे ५५
१, २, ४ से २३, २५ से ४४, ७४, ७५, ७८, ८१, ८७
९१ से ९८ ।

१५ परित्त द्वार

१. एकांत परित्त में बोल पावे २ – ४, ७५ ।
२. एकांत अपरित्त में बोल पावे १ – ७४ ।
३. परित्त और अपरित्त इन दोनों में बोल पावे ९४ – १,
२, ३, ५ से ७३, ७७ से ९८ ।
४. नोपरित्त नोअपरित्त में बोल पावे १ – ७६ ।

१६ पर्याप्त द्वार

१. एकांत पर्याप्त में बोल पावे १९ – ३, ४५ से ४८, ५३
से ५७, ६८ से ७१, ७३, ७७, ७८, ८४, ८५ ।
२. एकांत अपर्याप्त में बोल पावे २० – २४, ४९ से ५२,
५८ से ६७, ७२, ७९, ८०, ८२, ८३ ।

३. पर्याप्त और अपर्याप्त - इन दोनों में बोल पावे ५८ - १, २, ४ से २३, २५ से ४४, ७४, ७५, ८१, ८६ से ९८ ।

४. नोपर्याप्त नोअपर्याप्त में बोल पावे १ - ७६ ।

१७ सूक्ष्म द्वार

१. एकांत सूक्ष्म में बोल पावे १५ - ६४ से ७३, ८२ से ८६ ।

२. एकांत बादर में बोल पावे ६८ - १ से ६३, ७७ से ८१।

३. सूक्ष्म और बादर - इन दोनों में बोल पावे १४ - ७४, ७५, ८७ से ९८ ।

४. नोसूक्ष्म नोबादर में बोल पावे १ - ७६ ।

१८ सन्नी द्वार

१. एकांत सन्नी में बोल पावे ३९ - १, २, ४ से २३, २५ से २८, ३०, ३२ से ३७, ३९, ४०, ४१ से ४४ ।

२. एकांत असन्नी में बोल पावे ३९ - ३, २४, ४५, ४७, ४८, ५० से ७३, ७७, ७९, ८२ से ८६, ८८ से ९० ।

३. सन्नी और असन्नी - इन दोनों में बोल पावे १९ - २९, ३१, ३८, ४६, ४९, ७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ९१ से ९८ ।

४. नोसन्नी नोअसन्नी में बोल पावे १ - ७६ ।



१९ भव्य द्वार

१. एकांत भव्य में बोल पावे ३ – ४, ७५, ८७ ।

२. एकांत अभव्य में बोल पावे १ – ७४ ।

३. भव्य और अभव्य – इन दोनों में बोल पावे ९३ – १, २, ३, ५ से ७३, ७७ से ८६, ८८ से ९८ ।

४. नोभव्य नोअभव्य में बोल पावे १ – ७६ ।

२० अस्ति द्वार

१. जीवास्तिकाय में बोल पावे ९४ – १ से ५३, ५५ से ५९, ६१ से ७१, ७४ से ९८ (निगोद छूटे) ।

२. पुद्गलास्तिकाय में बोल पावे ४ – ५४, ६०, ७२, ७३।

३. धर्मास्तिकाय ४. अधर्मास्तिकाय ५. आकाशास्तिकाय और ६. काल – इन चारों द्रव्यों में अट्ठाणु बोल में से कोई भी बोल नहीं मिलता ।

२१ चरम द्वार

१. एकांत चरम में बोल पावे ३ – ४, ७५, ८७ ।

२. एकांत अचरम में बोल पावे २ – ७४, ७६ ।

३. चरम और अचरम – इन दोनों में बोल पावे ९३ – १, २, ३, ५ से ७३, ७७ से ८६, ८८ से ९८ ।

२२ दण्डक द्वार

१. एकांत नारकी के दण्डक में बोल पावे ७ – १२, १३, १६, १८, २०, २३, ३१ ।

२. एकांत भवनपति के १० दण्डक में बोल पावे २ - २९, ३० ।

३. एकांत पृथ्वीकाय के दण्डक में बोल पावे ४ - ५५, ६१, ६५, ६९ ।

४. एकांत अप्काय के दण्डक में बोल पावे ४ - ५६, ६२, ६६, ७० ।

५. एकांत तेजस्काय के दण्डक में बोल पावे ४ - ३, ५८, ६४, ६८ ।

६. एकांत वायुकाय के दण्डक में बोल पावे ४ - ५७, ६३, ६७, ७१ ।

७. एकांत वनस्पतिकाय के दण्डक में बोल पावे १२ - ५३, ५४, ५९, ६०, ७२, ७३, ७७, ७९, ८२, ८४, ८८, ८९ ।

८. एकांत बेइन्द्रिय के दण्डक में बोल पावे २- ४७, ५२।

९. एकांत तेइन्द्रिय के दण्डक में बोल पावे २ - ४८, ५१।

१०. एकांत चउरिन्द्रिय के दण्डक में बोल पावे २-४५, ५०।

११. एकांत तिर्यंच पंचेन्द्रिय के दंडक में बोल पावे ९ - ३२ से ३७, ४२ से ४४ ।

१२. एकांत मनुष्य के दंडक में बोल पावे ३ - १, २, २४ ।

१३. एकांत वाणव्यन्तर के दंडक में बोल पावे २-३८, ३९ ।

१४. एकांत ज्योतिषी के दंडक में बोल पावे २ - ४०, ४१।

१५. एकांत वैमानिक के दंडक में बोल पावे १८ - ४ से ११, १४, १५, १७, १९, २१, २२, २५ से २८ ।

१६. पृथ्वीकाय, अप्काय, तेजस्काय, वायुकाय और वनस्पतिकाय, इन पांचों दंडक में बोल पावे ४ - ८३, ८५, ८६, ९० ।

१७. पाँच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय और तिर्यंचपंचेन्द्रिय, इन नव दण्डक में बोल पावे १ - ९१ ।

१८. पंचेन्द्रिय के १६ दण्डक में बोल पावे २ - ४६, ४९ ।

१९. समुच्चय चौबीस ही दण्डक में बोल पावे १३ - ७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ९२ से ९८ ।

२०. दण्डक रहित सिद्ध भगवान् में बोल पावे १ - ७६ ।

२३ शरीर द्वार

१. औदारिक शरीर में बोल पावे ६६ - १, २, ३, २४, ३२ से ३७, ४२ से ७५, ७७ से ९८ ।

२. वैक्रिय शरीर में बोल पावे ६० - १, २, ४ से २३, २५ से ४४, ४६, ४९, ५७, ७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ९० से ९८ ।

(अ) भवप्रत्ययिक वैक्रिय शरीर में बोल पावे ३३ - ४ से २३, २५ से ३१, ३८ से ४१, ४९, ८० ।

(आ) लब्धि प्रत्ययिक वैक्रिय शरीर में बोल पावे १४-१, २, ३२ से ३७, ४२, ४३, ४४, ५७, ९०, ९१ ।

(इ) भवप्रत्ययिक और लब्धिप्रत्ययिक - इन दोनों वैक्रिय शरीर में बोल पावे १३ - ४६, ७४, ७५, ७८, ८१, ८७, ९२ से ९८ ।

३. आहारक शरीर में बोल पावे १० - १, ४६, ७८, ८१, ८७, ९४ से ९८ ।
४. तैजस् और कार्मण इन दोनों शरीर में बोल पावे ९७ - १ से ७५, ७७ से ९८ ।
५. अशरीरी में बोल पावे १ - ७६ ।

२४ अवगाहना द्वार

१. जघन्य अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना में बोल पावे ९७ - १ से ७५, ७७ से ९८ ।
२. उत्कृष्ट एक हजार योजन झाझेरी अवगाहना में बोल पावे १७ - ५३, ७४, ७५, ७७, ७८, ८१, ८७, ८९ से ९८ ।
३. स्व स्व स्थान की उत्कृष्ट अवगाहना में बोल पावे ८० - १ से ५२, ५४ से ७३, ७९, ८०, ८२ से ८६, ८८ ।
४. शरीर प्रदेश तो नहीं और जीव प्रदेश की जघन्य एक हाथ आठ अंगुल की अवगाहना में और उत्कृष्ट ३३३ धनुष ३२ अंगुल की अवगाहना में बोल पावे १ - ७६ ।

२५ संहनन द्वार

१. वज्रऋषभनाराच आदि छह संहनन में बोल पावे २७ - १, २, ३२ से ३७, ४२, ४३, ४४, ४६, ४९, ७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ९१ से ९८ ।
२. एकांत छेवट्ठ संहनन में बोल पावे ३९ - ३, २४, ४५, ४७, ४८, ५० से ७३, ७७, ७९, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९० ।

३. समुच्चय छेवट्ट संहनन में बोल पावे ६६ - १, २, ३, २४, ३२ से ३७, ४२ से ७५, ७७ से ९८ ।

४. असंहनन में बोल पावे ३२ - ४ से २३, २५ से ३१, ३८ से ४१, ७६ ।

२६ संस्थान द्वार

१. एकांत समचतुरंस संस्थान में बोल पावे २४ - ४ से ११, १४, १५, १७, १९, २१, २२, २५ से ३०, ३८ से ४१ ।

२. समुच्चय समचतुरंस संस्थान में बोल पावे ५१ - २४ पूर्वोक्त १, २, ३२ से ३७, ४२, ४३, ४४, ४६, ४९, ७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ९१ से ९८ ।

३. न्यग्रोधपरिमण्डल, सादि, वामन और कुब्ज - इन चारों संस्थानों में बोल पावे २७ - १, २, ३२ से ३७, ४२, ४३, ४४, ४६, ४९, ७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ९१ से ९८ ।

४. एकांत हुण्डक संस्थान में बोल पावे ४६ - ३, १२, १३, १६, १८, २०, २३, २४, ३१, ४५, ४७, ४८, ५० से ७३, ७७, ७९, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९० ।

५. समुच्चय हुण्डक संस्थान में बोल पावे ७३ - १, २, ३, १२, १३, १६, १८, २०, २३, २४, ३१ से ३७, ४२ से ७५, ७७ से ९८ ।

६. छह संस्थान तो नहीं किन्तु अनित्थंस्थ संस्थान में बोल पावे १ - ७६ ।

२७ संज्ञा द्वार

१. आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन – चारों संज्ञा में बोल पावे ९७ – १ से ७५, ७७ से ९८ ।
२. एकांत नो संज्ञोपयुक्त में बोल पावे १ – ७६ ।
३. समुच्चय नो संज्ञोपयुक्त में बोल पावे १२ – १, २, ४६, ७६, ७८, ८१, ८७, ९४ से ९८ ।

२८ समुद्घात द्वार

१. वेदनीय, कषाय और मारणान्तिक इन – तीनों समुद्घातों में बोल पावे ९७ – १ से ७५, ७७ से ९८ ।
२. वैक्रिय समुद्घात में बोल पावे ५४ – १, २, ८ से २३, २५ से ४४, ४६, ५७, ७४, ७५, ७८, ८१, ८७, ९० से ९८ ।
३. तैजस् समुद्घात में बोल पावे ४५ – १, २, ८ से ११, १४, १५, १७, १९, २१, २२, २५ से ३०, ३२ से ४४, ४६, ७४, ७५, ७८, ८१, ८७, ९१ से ९८।
४. आहारक समुद्घात में बोल पावे १० – १, ४६, ७८, ८१, ८७, ९४ से ९८ ।
५. केवली समुद्घात में बोल पावे ८ – १, २, ७८, ८१, ८७, ९६, ९७, ९८ ।
६. असमोहया (सातों समुद्घात से रहित) में बोल पावे १ – ७६ ।

२९ पर्याप्ति द्वार

१. आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास - इन चारों पर्याप्ति में बोल पावे ३३ - ३, २४, ५३ से ७३, ७७, ७९, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९० ।

२. आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास और भाषा - इन पाँचों पर्याप्ति में बोल पावे ६ - ४५, ४७, ४८, ५०, ५१, ५२ ।

३. छहों पर्याप्तियों में बोल पावे ५८ - १, २, ४ से २३, २५ से ४४, ४६, ४९, ७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ९१ से ९८ ।

४. नोपर्याप्त नोअपर्याप्त में बोल पावे १ - ७६ ।

३० आहार द्वार

१. जो जीव २८८ बोल का आहार लेवे, जिनमें व्याघात की अपेक्षा कदाचित् तीन दिशा कदाचित् चार और कदाचित् पाँच दिशा और निर्व्याघात हो, तो छह दिशा का आहार लेने वाले में बोल पावे ३४ - ५७, ६३ से ७५, ७८, ८० से ९८ ।

२. निर्व्याघात की अपेक्षा नियमा छह दिशा का आहार करने वाले में बोल पावे ६३ - १ से ५६, ५८ से ६२, ७७, ७९ ।

३. एकांत अनाहारक में बोल पावे १ - ७६ ।

३१ उत्पात द्वार

१. जघन्य १, २, ३ उत्कृष्ट संख्यात उत्पन्न होवे, उनमें बोल पावे १० - १, २, ४ से ११ ।

२. जघन्य १, २, ३ यावत् संख्यात, उत्कृष्ट असंख्यात उपजे जिन में बोल पावे ५९ - ३, १२ से ५३, ५५ से ५९, ६१ से ७१ ।

३. जघन्य १, २, ३ यावत् संख्यात असंख्यात उत्कृष्ट अनन्ता उपजे, जिन में बोल पावे २८ ☆ - ५४, ६०, ७२, ७३, ७४, ७५, ७७ से ९८ ।

४. जघन्य १, २, ३ उत्कृष्ट १०८ सिद्ध होवे जिन में बोल पावे १ - ७६ ।

३२ स्थिति द्वार

१. जघन्य अंतर्मुहूर्त्त की स्थिति में बोल पावे ६६ - १, २, ३, २४, ३२ से ३७, ४२ से ७५, ७७ से ९८ ।

२. स्व-स्व स्थान की जघन्य स्थिति में बोल पावे ९७ - १ से ७५, ७७ से ९८ ।

☆ यद्यपि ९८ बोल की अल्पबहुत्व में निगोद की अल्पबहुत्व है तथापि अल्पबहुत्व के प्रारंभ में आगमकारों ने इसे 'सव्वजीवप्पबहुं' कहा है इसलिये निगोद के बोलों में अल्पबहुत्व शरीर की होते हुए भी जीव तो है ही और जीव होने से उनका उत्पात च्यवन भी है वह स्वस्थान परस्थान की अपेक्षा से एक से लेकर अनन्त तक होता है । इसीलिये उत्पात च्यवन में इन बोलों को जघन्य १, २, ३ यावत् संख्यात असंख्यात उत्कृष्ट अनन्ता उपजने में लेना उचित लगता है ।



३. उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की स्थिति में बोल पावे १५ - ४, १२, ४६, ७४, ७५, ७८, ८१, ८७, ९२ से ९८।

४. स्व-स्व स्थान की उत्कृष्ट स्थिति में बोल पावे ९७ - १ से ७५, ७७ से ९८ ।

५. सादि-अपर्यवसित भांगा की स्थिति में बोल पावे १ - ७६ ।

३३ समोहया असमोहया द्वार

१. समोहया असमोहया दोनों प्रकार के मरण मरने वाले में बोल पावे ९७ - १ से ७५, ७७ से ९८ ।

२. दोनों प्रकार के मरण रहित-अमर में बोल पावे १-७६।

३४ च्यवन द्वार

१. जघन्य १, २, ३, उत्कृष्ट संख्यात च्यवे, जिनमें बोल पावे १० - १, २, ४ से ११ ।

२. जघन्य १, २, ३ यावत् संख्यात उत्कृष्ट असंख्यात च्यवे जिनमें बोल पावे ५९ - ३, १२ से ५३, ५५ से ५९, ६१ से ७१ ।

३. जघन्य १,२,३ यावत् संख्यात असंख्यात उत्कृष्ट अनंत च्यवे जिनमें बोल पावे २८ ※ - ५४, ६०, ७२, ७३, ७४, ७५, ७७ से ९८ ।

४. च्यवन रहित सिद्ध में बोल पावे १ - ७६ ।

※ यद्यपि ९८ बोल की अल्पबहुत्व में निगोद की अल्पबहुत्व है तथापि अल्पबहुत्व के प्रारंभ में आगमकारों ने इसे 'सव्वजीवप्पबहुं'



३५ गत्यागति द्वार

१. एक गति ❀ से आवे और एक गति में जावे, जिनमें बोल पावे ८ - ४ से ११ ।

२. दो गति✿ से आवे और एक गति में जावे जिनमें बोल पावे ९ - ३, १२, ५७, ५८, ६३, ६४, ६७, ६८, ७१ ।

३. दो गति ✡ से आवे और दो गति में जावे जिनमें बोल पावे ४९ - १३ से ३१, ३८ से ४१, ४५, ४७ से ५२, ५४, ५९, ६०, ६१, ६२, ६५, ६६, ६९, ७०,७२, ७३, ७९, ८०, ८२ से ८६, ८८ ।

(अ) प्रकारान्तर से बोल पावे ४३ - १३ से ३१, ३८ से ४१, ४५, ४७, ४८, ५०, ५१, ५२, ५४, ६०, ६५, ६६, ६९, ७०, ७२, ७३, ८२ से ८६, ८८ ।

४. तीन गति ❂ से आवे और दो गति में जावे जिनमें बोल पावे ६ - ५३, ५५, ५६, ७७, ८९, ९० ।

ा है इसलिये निगोद के बोलों में अल्पबहुत्व शरीर की होते हुए भी जीव है ही और जीव होने से उनका उत्पात च्यवन भी है वह स्वस्थान परस्थान अपेक्षा से एक से लेकर अनन्त तक होता है । इसीलिये उत्पात च्यवन में बोलों को जघन्य १, २, ३ यावत् संख्यात असंख्यात उत्कृष्ट अनन्ता जने में लेना उचित लगता है ।

❀ मनुष्य गति ।

✿ तिर्यग्गति और मनुष्य गति से आवे और एक तिर्यग्गति में जावे ।

✡ तिर्यग्गति और मनुष्य गति से आवे और तिर्यग्गति तथा मनुष्य गति जावे ।

❂ तिर्यंच, मनुष्य और देव - इन तीन गति से आवे और तिर्यग्गति ा मनुष्य गति में जावे ।



(अ) प्रकारान्तर से बोल पावे १० - ५३, ५५, ५

५९, ६१, ६२, ७७, ७९, ८९, ९० ।

५. चार गति ✿ से आवे और चार गति में जावे, जि

बोल पावे १८ - ३२ से ३७, ४२, ४३, ४४, ४६, ७

७५, ९१ से ९६ ।

(अ) प्रकारान्तर से बोल पावे २० - उपरोक्त १८

सिवाय बढ़े २ - ४९, ८० ।

६. चार गति ❖ से आवे और पाँच गति में जावे जि

बोल पावे ७ - १, २, ७८, ८१, ८७, ९७, ९८ ।

७. आगति एक - मनुष्य की और गति नहीं, ऐसे ति

भगवान् में बोल पावे १ - ७६ ।

३६ प्राण द्वार

१. स्पर्शनेन्द्रिय प्राण, काय-बल प्राण, श्वासोच्छ्वास

और आयुप्राण - इन चार प्राणों में बोल पावे ३

३, ५३ से ७३, ७७, ७९, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९०

२. रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्वास

आयु - इन पाँच प्राणों में बोल पावे १ - ५२ ।

३. रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय, वचनबल, काय

श्वासोच्छ्वास और आयु - इन छह प्राणों में ब

पावे १ - ४७ ।

✿ नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव - इन चार गति से आवे और

चारों गति में जावे ।

❖ नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव - इन चार गति से आवे

नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव तथा सिद्ध - इन पाँच गति में जावे ।



४. घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु - इन छह प्राणों में बोल पावे १ - ५१ ।

५. घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु - इन सात प्राणों में बोल पावे १ - ४८ ।

६. चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु - इन सात प्राणों में बोल पावे १ - ५० ।

७. चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु - इन आठ प्राणों में बोल पावे १ - ४५ ।

८. श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु - इन आठ प्राणों में बोल पावे ३ - २४, ४९, ८० ।

९. श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय, मनोबल, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु - इन दसों प्राणों में बोल पावे ५६ - १, २, ४ से २३, २५ से ४४, ४६, ७४, ७५, ७८, ८१, ८७, ९१ से ९८।

१०. दस द्रव्य-प्राणों से रहित और चार भाव-प्राणों करके सहित ऐसे सिद्ध भगवान् में बोल पावे १ - ७६ ।

३७ शीतादि योनि द्वार

१. एकांत शीत योनि में बोल पावे १० - २०, २३, ३१, ५४, ६०, ७२, ७३, ८२, ८४, ८८ ।

२. एकांत उष्ण योनि में बोल पावे ६ – ३, १२, १३, ५८, ६४, ६८ ।
३. शीत और उष्ण – इन दोनों योनि में बोल पावे २ - १६, १८ ।
४. शीत, उष्ण और मिश्र – इन तीनों योनि में बोल पावे ४४ – २४, ४५ से ५३, ५५, ५६ ५७, ५९, ६१, ६२, ६३, ६५, ६६, ६७, ६९ से ७१, ७४, ७५, ७७ से ८१, ८३, ८५, ८६, ८७, ८९ से ९८ ।
५. शीतोष्ण (मिश्र) योनि में बोल पावे ३५ – १, २, ४ से ११, १४, १५, १७, १९, २१, २२, २५ से ३०, ३२ से ४४ ।
६. अयोनि में बोल पावे १ – ७६ ।

३८ सचित्तादि योनि द्वार

१. एकांत सचित्त योनि में बोल पावे ७ – ५४, ६०, ७२, ७३, ८२, ८४, ८८ ।
२. एकांत अचित्त योनि में बोल पावे ३१ – ४ से २३, २५ से ३१, ३८ से ४१ ।
३. सचित्त अचित्त और मिश्र – इन तीनों योनि में बोल पावे ४८ – ३, २४, ४५ से ५३, ५५ से ५९, ६१ से ७१, ७४, ७५, ७७ से ८१, ८३, ८५, ८६, ८७, ८९ से ९८ ।
४. सचित्ताचित्त (मिश्र) योनि में बोल पावे ११ – १, २, ३२ से ३७, ४२, ४३, ४४ ।

५. अयोनि में बोल पावे १ - ७६ ।

३९ संवृतादि योनि द्वार

१. संवृत योनि में बोल पावे ६३ - ३ से २३, २५ से ३१, ३८ से ४१, ५३ से ७३, ७७, ७९, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९० ।
२. विवृत योनि में बोल पावे ७ - २४, ४५, ४७, ४८, ५०, ५१, ५२ ।
३. संवृतविवृत (मिश्र) योनि में बोल पावे ११ - १, २, ३२ से ३७, ४२, ४३, ४४ ।
४. संवृत विवृत और संवृतविवृत - इन तीनों योनि में बोल पावे १६ - ४६, ४९, ७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ९१ से ९८ ।
५. अयोनि में बोल पावे १ - ७६ ।

४० लोक द्वार

१. एकांत अधोलोक में बोल पावे ९ - १२, १३, १६, १८, २०, २३, २९, ३०, ३१ ।
२. एकांत तिर्यग्लोक में बोल पावे ४ - ३८ से ४१ ।
३. अधोलोक और तिर्यग्लोक - इन दोनों में बोल पावे ५ - १, २, ३, २४, ५८ ।
४. ऊर्ध्वलोक में बोल पावे १९ - ४ से ११, १४, १५, १७, १९, २१, २२, २५ से २८, ७६ ।



५. अधोलोक, तिर्यग्लोक और ऊर्ध्वलोक - इन तीनों में बोल पावे ६१ - ३२ से ३७, ४२ से ५७, ५९ से ७५, ७७ से ९८ ।

४१ हीयमान, वर्द्धमान अवस्थित द्वार

१. हीयमान वर्द्धमान अवस्थित में बोल पावे ९४ - १ से ७३, ७५, ७७ से ८६, ८८ से ९७ ।
२. वर्द्धमान में बोल पावे १ - ७६ ।
३. एकांत अवस्थित में बोल पावे २ - ७४, ९८ ।
४. हीयमान व अवस्थित में बोल पावे १ - ८७ ।

४२ शाश्वत अशाश्वत द्वार

१. शाश्वत में बोल पावे ९५ - १ से २३, २५ से ९४, ९६, ९८ ।
२. अशाश्वत में बोल पावे ३ - २४, ९५, ९७ ।

४३ आत्म द्वार

१, द्रव्य, उपयोग और दर्शन - इन तीनों आत्मा में बोल पावे ९८ - सभी ।
२. कषाय, योग और वीर्य - इन तीनों आत्मा में बोल पावे ९७ - ७६ वां छोड़ कर सभी ।
३. ज्ञानात्मा में बोल पावे ५९ - १, २, ४ से २३, २५ से ४४, ४६, ४९ से ५२, ७६, ७८, ८०, ८१, ८७, ९१, ९३ से ९८ ।

४. चारित्र आत्मा में बोल पावे ११ - १, २, ४६, ७८, ८१, ८७, ९४ से ९८ ।

४४ जीव संख्या द्वार

१. संख्यात जीव में बोल पावे २ - १, २ ।

२. असंख्यात जीव में बोल पावे ६७ - ३ से ५३, ५५ से ५९, ६१ से ७१ ।

३. असंख्यात शरीर में बोल पावे ४ - ५४, ६०, ७२, ७३।

४. अनन्ता जीव में बोल पावे २५ - ७४ से ९८ ।

४५ अल्पबहुत्व संख्या द्वार

१. सब से थोड़ा में बोल पावे १ पहला ।

२. संख्यात गुण में बोल पावे २८ - २, ५ से ११, २६, २७, २८, ३०, ३३ से ४५, ६८, ७३, ८४ ।

३. असंख्यात गुण में बोल पावे ३५ - ३, ४, १२ से २५, २९, ३१, ३२, ४९, ५३ से ६४, ७२, ७९, ८२ ।

४. अनन्त गुण में बोल पावे ४ - ७४ से ७७ ।

५. विसेसाहिया में बोल पावे ३० - ४६, ४७, ४८, ५०, ५१, ५२, ६५, ६६, ६७, ६९, ७०, ७१, ७८, ८०, ८१, ८३, ८५ से ९८ ।

।। अट्ठाणु बोल के बासठिया पर ४५ द्वार संपूर्ण ।।



परिशिष्ट

१

जीव के १४ भेद में -

१. ६४ से ६७, ७२, ८२, ८३ - इन सात बोलों में जीव का भेद १ सूक्ष्म एकेन्द्रिय का अपर्याप्त (१) ।

२. ६८ से ७१, ७३, ८४, ८५ - इन सात बोलों में जीव का भेद १ - सूक्ष्म एकेन्द्रिय का पर्याप्त (२) ।

३. ८६ - इस एक बोल में जीव के भेद २ - १ सूक्ष्म एकेन्द्रिय के अपर्याप्त (१) और २ सूक्ष्म एकेन्द्रिय के पर्याप्त (२) ।

४. ५८ से ६३, ७९ - इन सात बोलों में जीव का भेद १ - बादर एकेन्द्रिय का अपर्याप्त (३) ।

५. ३, ५३ से ५७, ७७ - इन सात बोलों में जीव का भेद १ - बादर एकेन्द्रिय का पर्याप्त (४) ।

६. ८८, ८९, ९० - इन तीन बोलों में जीव के ४ भेद - १ सूक्ष्म एकेन्द्रिय का अपर्याप्त (१) - २ सूक्ष्म एकेन्द्रिय का पर्याप्त (२) - ३ बादर एकेन्द्रिय का अपर्याप्त (३) और ४ बादर एकेन्द्रिय का पर्याप्त (४)।

७. ५२ - इस एक बोल में जीव का भेद - १ बेइन्द्रिय का अपर्याप्त (५) ।

८. ५१ - इस एक बोल में जीव का भेद १ - १ तेइन्द्रिय का अपर्याप्त (७) ।



९. ५० - इस एक बोल में जीव का भेद १ - १ चउरिन्द्रिय का अपर्याप्त (९) ।

१०. ४७ - इस एक बोल में जीव का भेद १ - बेइन्द्रिय का पर्याप्त (६) ।

११. ४८ - इस एक बोल में जीव का भेद १ - तेइन्द्रिय का पर्याप्त (८) ।

१२. ४५ - इस एक बोल में जीव का १ भेद - चउरिन्द्रिय का पर्याप्त (१०) ।

१३. २४ - इस एक बोल में जीव का १ भेद - असन्नी पंचेन्द्रिय का अपर्याप्त (११) ।

१४. ४९ - इस एक बोल में जीव के २ भेद - असन्नी पंचेन्द्रिय का अपर्याप्त (११) और २ सन्नी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त (१३) ।

१५. ४६ इस एक बोल में जीव के २ भेद - असन्नी पंचेन्द्रिय के पर्याप्त (१२) और २ सन्नी पंचेन्द्रिय के पर्याप्त (१४) ।

१६. १, २, ४ से २३, २५ से २८, ३०, ३२ से ३७, ३९ से ४४ इन ३९ बोलों में जीव के २ भेद - सन्नी पंचेन्द्रिय का अपर्याप्त (१३) और सन्नी पंचेन्द्रिय का पर्याप्त (१४) ।

१७. २९, ३१, ३८ - इन तीन बोलों में जीव के ३ भेद - असन्नी पंचेन्द्रिय का अपर्याप्त (११) सन्नी पंचेन्द्रिय का अपर्याप्त (१३) सन्नी पंचेन्द्रिय का पर्याप्त (१४)।

१८. ८० - इस एक बोल में जीव के ६ भेद - वादर एकेन्द्रिय के अपर्याप्त (३) बेइन्द्रिय के अपर्याप्त



(५) तेइन्द्रिय अपर्याप्त जीव भेद (७) चउरिन्द्रिय अपर्याप्त (९) असन्नी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त (१ और सन्नी पंचेन्द्रिय के अपर्याप्त (१३)।

१९. ७८ - इस एक बोल में जीव के ६ भेद - ब एकेन्द्रिय के पर्याप्त (४) बेइन्द्रिय के पर्याप्त (तेइन्द्रिय के पर्याप्त (८) चउरिन्द्रिय के पर्याप्त (१ असन्नी पंचेन्द्रिय कें पर्याप्त (१२) और सन्नी पंचे के पर्याप्त (१४)।

२०. ८१ - इस एक बोल में जीव के भेद १२ - ब एकेन्द्रिय के अपर्याप्त (३) से सन्नी पंचेन्द्रिय पर्याप्त (१४) तक।

२१. ७४, ७५, ८७, ९१ से ९८ - इन ग्यारह बोलों में के भेद १४ - सूक्ष्म एकेन्द्रिय के अपर्याप्त (१ सन्नी पंचेन्द्रिय के पर्याप्त (१४) तक सभी।

२२. ७६ - इस एक बोल में जीव के भेद १४ में से भी नहीं।

२

गुणठाणा १४

१. ३, २४, ४५, ४७, ४८, ५३ से ७४, ७७, ७९, ८ ८६, ८८, ८९, ९०, ९२ - इन अड़तीस बोलों पहला गुणठाणा।

२. ५०, ५१, ५२ - इन तीन बोलों में पहला द गुणठाणा।

३. ७५ - इस एक बोल में गुणठाणा २ - पहला और तीसरा ।

४. ४९, ८० - इन दो बोलों में गुणठाणा ३ - पहला, दूसरा और चौथा ।

५. ४ - इस एक बोल में १ गुणठाणा - चौथा ।

६. ५ से २३, २५ से ३१, ३८ से ४१, ९३ - इन इकत्तीस बोलों में गुणठाणा ४ - पहिले से चौथे तक ।

७. ३२ से ३७, ४२, ४३, ४४, ९१ - इन दस बोलों में गुणठाणा ५ - पहिले से पाँचवें तक ।

८. ९४ - इस एक बोल में गुणठाणा १० - पहिले से दसवें तक ।

९. ४६, ९५ - इन दो बोलों में गुणठाणा १२ - पहिले से बारहवें तक ।

१०. ९६ - इस एक बोल में गुणठाणा १३ - पहिले से तेरहवें तक ।

११. १, २, ७८, ८१, ८७, ९७, ९८ - इन सात बोलों में गुणठाणा १४ - पहिले से चौदहवें तक ।

१२. ७६ - इस एक बोल में गुणठाणा नहीं ।

३

योग १५

१. ३, ५३ से ५६, ६८ से ७१, ७३, ७७, ८४, ८५ - इन तेरह बोलों में योग १ - औदारिक शरीर काययोग ।

२. ४६, ४७, ४८ - इन तीन बोलों में योग २ - व्यवहार वचनयोग और औदारिक शरीर काययोग ।

३. २४, ५०, ५१, ५२, ५८ से ६७, ७२, ७९, ८२, ८३, ८६, ८८, ८९ – इन इक्कीस बोलों में योग ३ - औदारिक द्विक और कार्मण-शरीर-काययोग ।

४. ५७ – इस एक बोल में योग ४ – औदारिक द्विक और वैक्रिय-द्विक ।

५. ४९, ८०, ९० – इन तीन बोलों में योग ५ – औदारिक द्विक, वैक्रिय द्विक और कार्मणशरीर काय़योग ।

६. ४ से २३, २५ से ३१, ३८ से ४१ – इन इकतीस बोलों में योग ११ – ४ मनोयोग, ४ वचनयोग, २ वैक्रियद्विक और १ कार्मणशरीर काययोग ।

७. २, ३२ से ३७, ४२, ४३, ४४, ७४, ७५, ९१, ९२ ९३ – इन पन्द्रह बोलों में योग १३ – ४ मनोयोग ४ वचनयोग, २ औदारिकद्विक, २ वैक्रियद्विक और १ कार्मणशरीर काययोग ।

८. ४६ – इस एक बोल में योग १४ – ४ मनोयोग, ४ वचनयोग, २ औदारिक द्विक, २ वैक्रियद्विक और २ आहारकद्विक ।

९. १, ७८, ८१, ८७, ९४ से ९८ – इन नौ बोलों में योग १५ – ४ मनोयोग, ४ वचनयोग, ७ काययोग ।

१०. ७६ – इस एक बोल में योग नही, अयोगी है ।

४

उपयोग १२

१. ७६ – इस एक बोल में उपयोग २ – १ केवलज्ञान और २ केवलदर्शन ।

२. ३, ४७, ४८, ५३ से ७३, ७७, ७९, ८२ से ८६, ८८, ८९, ९० – इन चौंतीस बोलों में उपयोग ३ – १ मतिअज्ञान, २ श्रुतअज्ञान और ३ अचक्षुदर्शन ।
३. २४, ४५ – इन दो बोलों में उपयोग ४ – २ अज्ञान, २ दर्शन ।
४. ५१, ५२ – इन दो बोलों में उपयोग ५ – २ ज्ञान, २ अज्ञान, १ दर्शन (अचक्षु) ।
५. ५० – इस एक बोल में उपयोग ६ – २ ज्ञान, २ अज्ञान, २ दर्शन ।
६. ७४, ७५, ९२ इन तीन बोलों में उपयोग ६ – ३ अज्ञान, ३ दर्शन ।
७. ४ – इस एक बोल में उपयोग ६ – ३ ज्ञान, ३ दर्शन ।
८. ५ से २३, २५ से ४४, ४९, ८०, ९१, ९३ – इन ४३ बोलों में उपयोग ९ – ३ ज्ञान, ३ अज्ञान, ३ दर्शन ।
९. ४६, ९४, ९५ – इन तीन बोलों में उपयोग १० – ४ ज्ञान, ३ अज्ञान और ३ दर्शन ।
१०. १, २, ७८, ८१, ८७, ९६, ९७, ९८ – इन आठ बोलों में उपयोग १२ – ५ ज्ञान, ३ अज्ञान और ४ दर्शन ।

५

लेश्या ६

१. १२, १३ – इन दो बोलों में लेश्या १ –
२. १८ – इस एक बोल में लेश्या १ –
३. २३, ३१ – इन दो बोलों में ले

४. १६ – इस एक बोल में लेश्या २ – कृष्ण और नील।
५. २० – इस एक बोल में लेश्या २ – नील और कापोत।
६. २५ से २८, ४०, ४१ – इन छह बोलों में लेश्या १ – तेजो ।
७. १९, २१, २२ – इन तीन बोलों में लेश्या १ – पद्म।
८. ४ से ११, १४, १५, १७ इन ग्यारह बोलों में लेश्या १ – शुक्ल ।
९. ३, २४, ४५, ४७, ४८, ५० से ५८, ६०, ६३ से ७३, ७७, ८२ से ८६, ८८ – इन तेतीस बोलों में लेश्या ३ – कृष्ण, नील और कापोत ।
१०. २९, ३०, ३८, ३९, ५९, ६१, ६२, ७९, ८९, ९० – इन दस बोलों में लेश्या ४ – कृष्ण, नील, कापोत और तेजो ।
११. १, २, ३२ से ३७, ४२, ४३, ४४, ४६, ४९, ७४, ७५, ७८, ८०, ८१, ८७, ९१ से ९८ – इन सत्तावीस बोलों में लेश्या ६ ही ।
१२. ७६ – इस एक बोल में लेश्या नहीं ।

।। अठाणु बोल के बासठिया का विवेचन संपूर्ण ।।



६

चौदह गुणस्थान का बासठिया

गुणस्थान के नाम	जीव का भेद	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
१. मिथ्यात्व गुणस्थान में	१४	१	१३	६	६
२. सास्वादन गुणस्थान में	६	१	१३	६	६
३. मिश्र गुणस्थान में	१	१	१०	६	६
४. अविरत सम्यग्दृष्टि गुण.	२	१	१३	६	६
५. देशविरत सम्यग्दृष्टि गुण.	१	१	१२	६	६
६. प्रमत्तसंयत गुणस्थान में	१	१	१४	७	६
७. अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में	१	१	९	७	३
८. निवृत्तिबादर गुणस्थान में	१	१	९	७	१
९. अनिवृत्तिबादर गुणस्थान में	१	१	९	७	१
१०. सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में	१	१	९	७*	१
११. उपशांतमोह गुणस्थान में	१	१	९	७	१
१२. क्षीणमोह गुणस्थान में	१	१	९	७	१
१३. सयोगी केवली गुणस्थान में	१	१	७	२	१
१४. अयोगी केवली गुणस्थान में	१	१	०	२	०

* भगवती सूत्र श. २५ उ. ७ में दसवें गुणस्थान वाले में ४ साकार उपयोग का ही विधान है लेकिन क्षयोपशम की दृष्टि से ३ अनाकार उपयोग भी होते हैं अतः क्षयोपशम की दृष्टि से ७ एवं उपयोग की दृष्टि से ४ उपयोग बोलना संगत लगता है ।

३२ बोल का बासठिया

१ समुच्चय जीव में

बोल	जीव का भेद	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
१. समुच्चय जीव में	१४	१४	१५	१२	६
२. समुच्चय अपर्याप्त	७	३	५	९	६
३. समुच्चय पर्याप्त	७	१४	१५	१२	६
४. समुच्चय अपर्याप्त अनाहारक	७	३	१	८	६
५. समुच्चय अपर्याप्त आहारक	७	३	४	९	६
६. समुच्चय पर्याप्त अनाहारक	१	२	१	२	१
७. समुच्चय पर्याप्त आहारक	७	१३	१४	१२	६

२ नारकी में

१. नारकी में	३	४	११	९	३
२. नारकी अपर्याप्त	२	३	३	९	३
३. नारकी पर्याप्त	१	४	१०	९	३
४. नारकी अपर्याप्त अनाहारक	२	३	१	८	३
५. नारकी अपर्याप्त आहारक	२	३	२	९	३
६. नारकी पर्याप्त आहारक	१	४	१०	९	३

३ तिर्यञ्च में

१. तिर्यंच में	१४	५	१३	९	६
२. तिर्यंच अपर्याप्त	७	३	३	६	६



बोल	जी०	गु०	योग	उ०	ले०
३. तिर्यंच पर्याप्त में	७	५	१२	९	६
४. तिर्यंच अपर्याप्त अनाहारक में	७	३	१	५	६
५. तिर्यंच अपर्याप्त आहारक में	७	३	२	६	६
६. तिर्यंच पर्याप्त आहारक में	७	५	१२	९	६

४ मनुष्य में

बोल	जी०	गु०	योग	उ०	ले०
१. मनुष्य में	३	१४	१५	१२	६
२. मनुष्य अपर्याप्त	२	३	३	८	६
३. मनुष्य पर्याप्त	१	१४	१५	१२	६
४. मनुष्य अपर्याप्त अनाहारक	२	३	१	७	६
५. मनुष्य अपर्याप्त आहारक	२	३	२	८	६
६. मनुष्य पर्याप्त अनाहारक	१	२	१	२	१
७. मनुष्य पर्याप्त आहारक	१	१३	१४	१२	६

५ देव में

बोल	जी०	गु०	योग	उ०	ले०
१. देव में	३	४	११	९	६
२. देव अपर्याप्त में	२	३	३	९	६
३. देव पर्याप्त में	१	४	१०	९	६
४. देव अपर्याप्त अनाहारक में	२	३	१	८	६
५. देव अपर्याप्त आहारक में	२	३	२	९	६
६. देव पर्याप्त आहारक में	१	४	१०	९	६

तेतीस बोल

सूत्र श्री उत्तराध्ययन, समवायांग तथा दशाश्रुतस्कंध आदि में तेतीस बोल का उल्लेख है । उसका विस्तार इस प्रकार है ।

(१) पहले बोले - एक प्रकार का असंयम - सभी प्रकार के आस्रव में प्रवृत्त होना ।

(२) दूसरे बोले - दो प्रकार का बन्धन - राग बन्धन और द्वेष बन्धन ।

(३) तीसरे बोले - तीन प्रकार का दंड - १ मन दण्ड, २ वचन दण्ड और ३ काय दण्ड ।

तीन प्रकार की गुप्ति - १ मन गुप्ति, २ वचन गुप्ति और ३ काय गुप्ति ।

तीन प्रकार का शल्य - १ माया शल्य, २ निदान शल्य ३ मिथ्या-दर्शन शल्य ।

तीन प्रकार का गर्व - १ ऋद्धि गर्व, २ रस गर्व और ३ साता गर्व ।

तीन प्रकार की विराधना - १ ज्ञान की विराधना २ दर्शन की विराधना और ३ चारित्र की विराधना ।

(४) चौथे बोले - **चार कषाय** - १ क्रोध कषाय, २ मान कषाय, ३ माया कषाय और ४ लोभ कषाय ।

चार संज्ञा - १ आहार संज्ञा, २ भय संज्ञा, ३ मैथुन संज्ञा और ४ परिग्रह संज्ञा ।

चार कथा - १ राज्य कथा, २ देश कथा, ३ स्त्री कथा और ४ भात कथा ।



चार ध्यान - १ आर्त्तध्यान, २ रौद्रध्यान, ३ धर्मध्यान और ४ शुक्लध्यान । तथा - १ पदस्थ, २ पिण्डस्थ, ३ रूपस्थ और ४ रूपातीत ध्यान ।

(५) पाँचवें बोले - पाँच क्रिया - १ कायिकी, २ अधिकरणिकी, ३ प्राद्वेषिकी, ४ पारितापनिकी और ५ प्राणातिपातिकी ।

पाँच काम गुण - शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श ।

पाँच महाव्रत - १ सर्वथा प्राणातिपात से निवृत्ति २ सर्वथा मृषावाद से निवृत्ति ३ सर्वथा अदत्तादान से निवृत्ति ४ सर्वथा मैथुन से निवृत्ति और ५ सर्वथा परिग्रह से निवृत्ति ।

पाँच समिति - १ ईर्या समिति, २ भाषा समिति ३ एषणा समिति, ४ आदान-भाण्ड-मात्र-निक्षेपना समिति और ५ उच्चार-प्रस्रवण-खेल-सिंघाण-जल परिस्थापनिका समिति, (इन कार्यों में शुद्ध उपयोग) ।

पाँच प्रमाद - १ मद्य, २ विषय, ३ कषाय, ४ निद्रा और ५ विकथा ।

(६) छठे बोले - छह काय - १ पृथ्वीकाय, २ अप्काय, ३ तेजस्काय, ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय और ६ त्रसकाय ।

छह लेश्या - १ कृष्ण लेश्या, २ नील लेश्या, ३ कापोत लेश्या, ४ तेजो लेश्या, ५ पद्म लेश्या और ६ शुक्ल लेश्या ।

(७) सातवें बोले - सात भय -

१ इहलोक भय - मनुष्य से मनुष्य को भय ।

२ परलोक भय - मनुष्य को देव या तिर्यंच से भय ।



३ आदान भय - धन-दौलत के नष्ट होने का भय।

४ अकस्मात् भय - अचानक आपत्ति या दुःख आने का भय।

५ आजीविका भय - भविष्य में आजीविका में बाधा उत्पन्न होने का भय ❀ ।

६ मरण भय - मृत्यु का डर ।

७ अपयश भय-प्रतिष्ठा (इज्जत) में न्यूनता आने का भय

(८) आठवें बोले - आठ मद - १ जाति मद, २ कुल मद, ३ बल मद, ४ रूप मद, ५ तप मद, ६ लाभ मद, ७ सूत्र मद और ८ ऐश्वर्य मद ।

(९) नौवें बोले - ब्रह्मचर्य की नव गुप्ति (रक्षा-बाड़)

१. ब्रह्मचारी पुरुष ऐसे स्थान में न रहे जहाँ - स्त्री, पशु और नपुंसक रहते हों, या बारबार आते-जाते हों । यदि रहे तो चूहे और बिल्ली का दृष्टान्त । जिस स्थान में बिल्ली रहती हो उस स्थान पर चूहे, चाहे जितनी सावधानी से रहे, उनके मारे जाने की संभावना है, वैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष, स्त्री आदि सहित स्थान में रहे, तो उनका ब्रह्मचर्य खण्डित होना सम्भव है ।

२. ब्रह्मचारी पुरुष, स्त्री सम्बन्धी काम-राग बढ़ाने वाली कथा वार्ता नहीं करे, यदि करे तो नींबू और रसना (जीभ) का दृष्टान्त । नींबू रस का जानकार, जब नींबू का नाम लेता है, तो उसके मुंह में पानी आने लगता है, वैसे ही ब्रह्मचारी

❀ ठाणांग सूत्र में आजीविका के स्थान पर वेयणा भय (वेदना या पीड़ा का भय) है । समवायांग सूत्र में छठा मरण भय और सातवां अकस्मात् भय है ।

पुरुष, स्त्री सम्बन्धी कथा कहे, तो शील रत्न के भंग होने की सम्भावना रहती है ।

३. जिस स्थान पर स्त्री कुछ देर बैठी हो, उस स्थान पर ब्रह्मचारी को बैठना नहीं तथा स्त्री के साथ भी बैठना नहीं। यदि बैठे तो कोरा (कद्दु) और कणक का दृष्टान्त । कोरे का फल कणक (भिंजा हुआ आटा) के पास रखा जावे, तो वह कणक विशेष गीला होता जाता है और उसका रस कस घटता जाता है उसी प्रकार ब्रह्मचारी पुरुष का स्त्री के आसन पर बैठने से ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है ।

४. ब्रह्मचारी पुरुष, स्त्री के अंगोपांग, रूप–लावण्य निरखे नहीं, बारबार नजर भर के देखे नहीं । यदि देखे, तो कच्ची आँख और सूर्य का दृष्टान्त । जन्म लेते ही बालक सूर्य को देखे तो अन्धा हो जाता है या उसकी दृष्टि मन्द हो जाती है, वैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष, स्त्री के अंग–उपांग निरखे, तो ब्रह्मचर्य का नाश होना सम्भव है ।

५. ब्रह्मचारी पुरुष, स्त्री के रुदन, गीत, हास्य, आक्रंद, कुजित इत्यादि शब्द सुनाई पड़े, वैसी भींत या टट्टी की आड़ में रहे नहीं (पास के मकान में से भी इनकी ध्वनि कानों में आती हो तो वहाँ नहीं रहे) । यदि रहे तो मेघ और मयूर का दृष्टान्त । मेघ की गर्जना पर मयूर अवश्य बोलता है केकारव करता है, वैसे ही स्त्री के हास्यादि के शब्द सुनने पर कामराग बढ़ने और ब्रह्मचर्य खण्डित होने की संभावना रहती है ।

६. ब्रह्मचारी पुरुष, स्त्री के साथ पहले भोगे हुए भोगों को



याद नहीं करे, यदि याद करे, तो जिनरक्षित और रयणादेवी का दृष्टान्त । जिनरक्षित, रयणादेवी के साथ भोगे हुए कामभोग याद कर के ललचाया और मारा गया, वैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष पूर्व के भोगे हुए कामभोग का स्मरण करे तो शीलरत्न गँवा देता है ।

७. ब्रह्मचारी पुरुष, प्रतिदिन सरस-स्वादिष्ट आहार करे नहीं, करे तो सन्निपात के रोगी को-दूध मिश्री का दृष्टान्त । जिसे सन्निपात का रोग हो गया है, उसे दूध-मिश्री की ठंडाई पिलाई जावे, तो वह मर जाता है, वैसे ही सदैव सरस (पुष्ट) आहार करने वाला ब्रह्मचारी, अपना ब्रह्मचर्य खो बैठता है ।

८. ब्रह्मचारी पुरुष, लुखा एवं निरस आहार भी खूब ठूंस कर खावे नहीं, अधिक खावे तो सेर की हांडी में सवा सेर का दृष्टान्त । मिट्टी की कच्ची हांडी जिसमें सेर धान्य पकता है उसमें सवा सेर पकाया जावे, तो हांडी फट जाती है, वैसे ही ब्रह्मचारी अधिक भोजन करे, तो ब्रह्मचर्य नष्ट कर देता है ।

९. ब्रह्मचारी पुरुष को स्नान श्रृंगार करना नहीं, शरीर का मण्डन-विभूषा करना नहीं, यदि करे तो राँक के हाथ में रत्न का दृष्टान्त । जिस प्रकार राँक पुरुष में रत्न रखने की योग्यता नहीं होने से वह उछालता हुआ बाजार में चलता है, इससे देखने वाले का मन ललचाता है और रत्न छिन लिया जाता है । वह मूर्ख उसे पेटी में बन्द करके नहीं रखता । वैसे ही ब्रह्मचारी पुरुष न्हावे-धोवे, श्रृंगार करे, तो उसमें भी शीलरत्न रखने की अयोग्यता है । इससे ब्रह्मचर्य नष्ट हो जाता है ।

(१०) दसवें बोले - दस प्रकार का यति धर्म -

१. खंति - अपराधी पर वैरभाव नहीं रख कर क्षमा करना।



२. मुत्ति - लोभ रहित बनना ।

३. अज्जवे - सरलता-निष्कपटता ।

४. मद्दवे - मार्दव, नम्रता, अहंकार का त्याग ।

५. लाघवे - भण्डोपकरण की उपधि थोड़ी होना ।

६. सच्चे - सच्चाई से, प्रामाणिकता से बोलना व आचरण करना ।

७. संजमे - शरीर, मन और इन्द्रियों को वश में रखना, नियम में रखना ।

८. तवे - आत्म-शक्ति बढ़े, इच्छा निरोध शक्ति बढ़े, मनोबल दृढ़ होवे उस विधि से उपवास आदि तप करना ।

९. चियाए - ममता का त्याग करना ।

१०. बम्भचेरवासे - शुद्ध आचार पाले, मैथुन से सम्पूर्ण निवृत्ति करे ।

दस प्रकार की समाचारी -

१. आवस्सिया - उपाश्रय से बाहर जाना हो तब बड़े मुनि से अर्ज करे कि मुझे बाहर जाना जरूरी है ।

२. निसीहिया - उपाश्रय में पीछा लौटते समय गुर्वादि से कहे - 'मैं अपने काम से निवृत्त होकर आ गया हूँ ।'

३. आपुच्छणा - खुद के काम होवे, तो गुरु से पूछे ।

४. पडिपुच्छणा - अन्य मुनियों के काम होवे, तो गुरु से बारम्बार पूछे ।

५. छंदणा - अपनी लाई हुई वस्तु बड़ों को ग्रहण करने को कहे ।

६. इच्छाकार - गुरु से प्रार्थना करे कि अगर आपकी इच्छा होवे, तो मुझे सूत्रार्थ-ज्ञान दान दीजिये ।



७. मिच्छाकार – पापकर्म का गुरु के सामने मिथ्या दुष्कृत कहे ।

८. तहक्कार – गुरु के वचन को प्रमाण करे – स्वीकार करे अथवा 'आप जैसा कहते हैं वैसा ही है' ऐसा कहे ।

९. अब्भुट्ठाणं – गुरु तथा बड़े मुनिवर आवे तब, सात-आठ चरण–सामने जाकर सत्कार करे, वापिस जावे, तब उतना ही पहुँचाने जावे ।

१०. उवसंपया – गुरुजनों से सूत्रार्थ ज्ञान लक्ष्मी – पाने के लिए सदैव सावधान रहे और गुरु के पास में रहे ।

(११) ग्यारहवें बोले – श्रावक की ग्यारह प्रतिमा -

१. दर्शन प्रतिमा – शुद्ध, अतिचार रहित समकित धर्म पाले। यह प्रतिमा एक मास की है ।

२. व्रत प्रतिमा – नाना प्रकार के व्रत–नियमों का अतिचार रहित पालन करे । यह प्रतिमा दो मास की है ।

३. सामायिक प्रतिमा – सदैव अतिचार–रहित सामायिक करे । यह प्रतिमा तीन मास की है ।

४. पौषध प्रतिमा – अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा आदि का अतिचार रहित पौषध करे । यह चार मास की है ।

५. कायोत्सर्ग प्रतिमा – सदैव रात्रि में कायोत्सर्ग करे और पाँच बातों का पालन करे – १ स्नान नहीं करे, २ रात्रि भोजन त्यागे, ३ धोती की लांग खुली रखे, ४ दिन को ब्रह्मचर्य पाले और ५ रात्रि को ब्रह्मचर्य का परिमाण करे । यह प्रतिमा पाँच मास की है ।



६. ब्रह्मचर्य प्रतिमा - अतिचार रहित पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करे । यह प्रतिमा छह मास की है ।

७. सचित्त त्याग प्रतिमा - सचित्त वस्तु नहीं भोगे । यह प्रतिमा जघन्य एक दिन की और उत्कृष्ट सात मास की है ।

८. आरंभ-त्याग प्रतिमा - स्वयं आरंभ नहीं करे । यह प्रतिमा जघन्य एक दिन व उत्कृष्ट आठ मास की है ।

९. प्रेष्य प्रतिमा - दूसरे से भी आरम्भ नहीं करावे । यह प्रतिमा जघन्य एक दिन, उत्कृष्ट नव मास की है ।

१०. उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा - अपने वास्ते आरंभ करके कोई वस्तु देवे, तो लेवे नहीं । खुरमुण्डन करावे या शिखा रखे । कोई उनसे संसार सम्बन्धी कोई बात एक-बार पूछे या बार-बार पूछे, तब जानता होवे, तो 'हां' कहे और नहीं जानता होवे तो 'ना' कहे। यह प्रतिमा जघन्य एक दिन और उत्कृष्ट दस मास की है ।

११. श्रमणभूत प्रतिमा - खुरमुण्डन करे, या लोच करे । साधु जितना ही उपकरण, पात्र, रजोहरणादि रखे । स्वज्ञाति की गोचरी करे और कहे कि "मैं श्रावक हूँ ।" साधु के समान उपदेश देवे । यह प्रतिमा उत्कृष्ट ग्यारह मास की है ।

सभी प्रतिमाओं में साढ़े पांच वर्ष लगते हैं ।

(१२) बारहवें बोले - भिक्षु की बारह प्रतिमा । ये प्रतिमायें नीचे लिखे हुए चौदह नियम से होती है । पहली प्रतिमा एक मास की है, जिसका पालन इस प्रकार होता है;-

१. शरीर पर ममता नहीं रखे, शरीर की शुश्रूषा नहीं करे । देव, मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी उपसर्ग समभाव से सहन करे ।

१ पृथ्वी शिला, २ काष्ठ शिला, ३ यथासंस्तृत (पहले से बिछी हुई)।

९. प्रतिमाधारी साधु, जिस स्थान में हैं, वहाँ स्त्री आदि आवे, तो भय के मारे बाहर निकले नहीं । कोई बरबस हाथ पकड़ कर निकालें, तो ईर्यासमिति सहित बाहर हो जावे तथा वहां आग लगे तो भी भय से बाहर आवे नहीं, कोई बाहर निकाले, तो ईर्यासमिति पूर्वक बाहर निकल जावे ।

१०. प्रतिमाधारी साधु के पाँव में काँटा लग जाय या आँख में कांटा (धूल तृण आदि) गिर जावे, तो आप उसे अपने हाथों से निकाले नहीं ।

११. प्रतिमाधारी साधु, सूर्योदय से सूर्य के अस्त होने तक विहार करे, बाद में एक कदम भी चले नहीं ।

१२. प्रतिमाधारी साधु को सचित्त पृथ्वी पर बैठना या सोना कल्पे नहीं तथा सचित्त रज लगे हुए पैरों से गृहस्थ के यहाँ गोचरी जाना कल्पे नहीं ।

१३. प्रतिमाधारी साधु, प्रासुक जल से भी हाथ पाँव और मुंह आदि धोवे नहीं, अशुचि का लेप दूर करने के लिए धोना कल्पता है ।

१४. प्रतिमाधारी साधु के मार्ग में हाथी, घोड़ा अथवा सिंह आदि जंगली जानवर सामने आये हों तो भी भय से रास्ता छोड़े नहीं, यदि वह जीव डरता हो, तो तुरंत अलग हट जावे तथा रास्ते चलते धूप में से छाया में और छाया से धूप में आवे नहीं और शीत-उष्ण का उपसर्ग समभाव से सहन करे ।

दूसरी प्रतिमा एक मास की, जिसमें दो दाति अन्न और दो दाति पानी लेना कल्पता है ।

तीसरी प्रतिमा एक मास की । जिसमें तीन दाति अन्न और तीन दाति पानी लेना कल्पे । इसी प्रकार चौथी, पाँचवीं, छठी और सातवीं प्रतिमा भी एक-एक मास की है । इनमें क्रमशः चार दाति, पाँच दाति, छह दाति और सात दाति आहार पानी लेना कल्पे ।

आठवीं प्रतिमा सात दिन की । चौविहार एकान्तर तप करे, ग्राम के बाहर रहे, तीन आसन करे-चित्ता सोवे, करवट (एक बाजु पर) सोवे, पलांठी लगा कर सोवे । परीषह से डरे नहीं ।

नौवीं प्रतिमा सात दिन की ऊपर प्रमाणे । इतना विशेष कि इन तीन आसन में से एक आसन करे-दण्ड आसन, लकुट आसन या उत्कट आसन ।

दसवीं प्रतिमा सात दिन की, ऊपर प्रमाणे । इतना विशेष कि इन तीन में से एक आसन करे-गोदुह आसन, वीरासन और अम्बकुब्ज आसन ।

ग्यारहवीं प्रतिमा एक दिन रात की । चौविहार बेला करे, गांव बाहर पाँव संकोच कर और हाथ फैलाकर कायोत्सर्ग करे ।

बारहवीं प्रतिमा एक रात की । चौविहार तेला करे । गाँव के बाहर शरीर वोसिरावे, नेत्र खुले रखे, पाँव संकोचे, हाथ पसारे और अमुक वस्तु पर दृष्टि लगाकर ध्यान करे । देव मनुष्य और तिर्यंच सम्बन्धी उपसर्ग सहे । इस प्रतिमा के आराधन से अवधि, मनःपर्यय और केवलज्ञान, इन तीन में से एक ज्ञान होता है ।

चलायमान हो जाय तो पागल बन जाय, दीर्घकाल का रोग हो जाय और केवली प्ररूपित धर्म से भ्रष्ट हो जाय ।

इन कुल बारह प्रतिमाओं का काल ७ मास २८ दिन का है।

(१३) तेरहवें बोले - क्रिया स्थान तेरह -

१. अर्थ दण्ड - खुद या परिवारादि के लिये हिंसादि करे ।

२. अनर्थ दण्ड - निरर्थक या कुत्सित अर्थ के लिये हिंसादि करे ।

३. हिंसा दण्ड - 'इसने मुझे मारा था, मारता है या मारेगा'- इस भाव से उसे मारना ।

४. अकस्मात् दण्ड - मारना किसी ओर को था, किन्तु मर जाय कोई दूसरा ही ।

५. दृष्टि विपर्यास दंड - शत्रु जानकर मित्र को मार डालना।

६. मृषावाद दण्ड - असत्य भाषण करना ।

७. अदत्तादान दण्ड - चोरी करना ।

८. अध्यात्म दण्ड - मन में दुष्ट विचार करना ।

९. मान दण्ड - गर्व करना ।

१०. मित्र दण्ड - माता-पिता और मित्र वर्ग को अल्प अपराध पर भी भारी दण्ड देना ।

११. माया दण्ड - कपट करना ।

१२. लोभ दण्ड - लोभ करना ।

१३. ईर्यापथिक दण्ड - सयोगी वीतराग को लगने वाली क्रिया ।

(१४) चौदहवें बोले - जीव के चौदह भेद -

१. सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त ।

२. सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त ।

३. बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त ।

४. बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त ।

५. बेइन्द्रिय अपर्याप्त ।

६. बेइन्द्रिय पर्याप्त ।

७. तेइन्द्रिय अपर्याप्त ।

८. तेइन्द्रिय पर्याप्त ।

९. चौरेन्द्रिय अपर्याप्त ।

१०. चौरेन्द्रिय पर्याप्त ।

११. असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त ।

१२. असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त ।

१३. संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त ।

१४. संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त ।

(१५) पन्द्रहवें बोले – परमाधार्मिक देव पन्द्रह -

१ अम्ब, २ अम्बरीष, ३ श्याम, ४ शबल, ५ रौद्र, महारौद्र, ७ काल, ८ महाकाल, ९ असिपत्र, १० धनुष, ११ कुं १२ बालुका, १३ वैतरणी, १४ खरस्वर और १५ महाघोष ।

(१६) सोलहवें बोले – सूत्रकृतांग के प्रथम श्रुतस्कं के सोलह अध्ययन इनके नाम – १ स्वसमय परसमय, २ वैतालि ३ उपसर्ग परिज्ञा, ४ स्त्री परिज्ञा, ५ नरक विभक्ति, ६ महा स्तुति, ७ कुशील परिभाषा, ८ वीर्याध्ययन, ९ धर्म, १० समा ११ मोक्षमार्ग, १२ समवसरण, १३ यथातथ्य, १४ ग्रंथ, १५ आदा और १६ गाथा ।

(१७) सतरहवें बोले - संयम सत्तरह प्रकार का -

१ पृथ्वीकाय संयम, २ अप्काय संयम, ३ तेजस्काय संयम, ४ वायुकाय संयम, ५ वनस्पतिकाय संयम, ६ बेइन्द्रिय संयम, ७ तेइन्द्रिय संयम, ८ चउरिन्द्रिय संयम, ९ पंचेन्द्रिय संयम, १० अजीवकाय संयम, ११ प्रेक्षा संयम, १२ उपेक्षा संयम, १३ परिस्थापनिका संयम, १४ प्रमार्जना संयम, १५ मनःसंयम, १६ वचन संयम और १७ काय संयम ।

(१८) अठारहवें बोले- ब्रह्मचर्य के अठारह प्रकार-

१ मन, वचन और काया करके औदारिक शरीर संबंधी भोग भोगे नहीं, भोगावे नहीं और जो भोग करते हैं, उन्हें अनुमोदे (प्रशंसे) नहीं (३×३=९ हुए) वैसे ही नौ भेद वैक्रिय शरीर सम्बन्धी - त्रिकरण त्रियोग के हैं ।

(१९) उन्नीसवें बोले - ज्ञातासूत्र के उन्नीस : ययन -

१ मेघकुमार का, २ धन्नासार्थवाह और विजय चोर का, मोर के अण्डों का, ४ कछुए का, ५ शैलक राजर्षि का, ६ तुंबे का, ७ धन्नासार्थवाह और चार बहुओं का, ८ मल्ली भगवती का, ९ जिनपाल और जिनरक्षित का, १० चन्द्र की कला का, ११ दावद्रव वृक्ष का, १२ जितशत्रु राजा और सुबुद्धि प्रधान का, १३ नन्द मणियार का, १४ तेतलीपुत्र प्रधान और पोटिला का, १५ नंदी फल का, १६ अपरकंका का, १७ अश्व का, १८ सुंसुमा बालिका का और १९ पुंडरीक कंडरीक का ।

(२०) बीसवें बोले - असमाधि के बीस स्थानक -

१ उतावल से चले, २ बिना पूंजे चले, ३ अयोग्य रीति से



पूंजे, ४ पाट-पाटला अधिक रखे, ५ बड़ों के-गुरुजनों के सामने बोले, ६ वृद्ध-स्थविर-गुरु का उपघात करे (मृत प्रायः करे) ७ साता-रस-विभूषा के निमित्त एकेन्द्रिय जीव हणे, ८ पल पल में क्रोध करे, ९ हमेशा क्रोध में जलता रहे, १० दूसरे के अवगुण बोले, चुगली-निंदा करे, ११ निश्चयकारी भाषा बोले, १२ नया क्लेश खड़ा करे, १३ दबे हुए क्लेश को पीछा जगावे, १४ अकाल में स्वाध्याय करे, १५ सचित्त पृथ्वी से भरे हुए हाथों से गोचरी करे, १६ एक प्रहर रात्रि बीतने पर भी जोर-जोर से बोले, १७ गच्छ में भेद उत्पन्न करे, १८ क्लेश फैला कर गच्छ में परस्पर दुःख उपजावे, १९ सूर्य उदय होने से अस्त होने तक खाया ही करे और २० अनेषणीय अप्रासुक आहार लेवे।

(२१) इक्कीसवें बोले - सबल (संयम को बिगाड़ने वाले) दोष इक्कीस प्रकार के हैं -

१. हस्तकर्म करे ।

२. मैथुन सेवे ।

३. रात्रि-भोजन करे ।

४. आधाकर्मी आहारादि सेवन करे ।

५. राजपिण्ड सेवन करे ।

६. पाँच बोल सेवे-खरीद किया हुआ, उधार लिया हुआ, जबरन् छिना हुआ, स्वामी की आज्ञा बिना लिया हुआ और स्थान पर या सामने लाकर दिया हुआ आहार आदि ग्रहण करे (साधु को देने के लिये ही खरीदा हो । अन्यथा स्वाभाविक तो सभी खरीदा जाता है) ।



७. त्याग कर के बार-बार तोड़े ।

८. एक मास में तीन बार कच्चे जल का स्पर्श करे-नदी उतरे ।

९. छह छह महीने में गण-संप्रदाय-पलटे ।

१०. एक मास में तीन बार माया (कपट) करे ।

११. जिसके मकान में रहे हों, उसी के यहां का आहार करे (शय्यातर-पिण्ड भोगवे) ।

१२. जानबूझ कर हिंसा करे ।

१३. जानबूझ कर झूठ बोले ।

१४. समझबूझ कर चोरी करे ।

१५. समझपूर्वक सचित्त-पृथ्वी पर शयन-आसन करे ।

१६. समझपूर्वक सचित्त-मिश्र पृथ्वी पर शय्या आदि करे ।

१७. सचित्त शिला तथा जिसमें छोटे-छोटे जन्तु रहे, वैसे काष्ठ आदि वस्तु पर अपना शयन-आसन लगावे ।

१८. समझपूर्वक दस प्रकार की सचित्त वस्तु खावे-मूल, कंद, स्कंध, त्वचा, शाखा, प्रवाल, पत्र, पुष्प, फल और बीज ।

१९. एक वर्ष में दस बार सचित्त जल का स्पर्श करे-नदी उतरे ।

२०. एक वर्ष में दस बार माया (कपट) करे ।

२१. सचित्त जल से भीगे हुए हाथ से गृहस्थ, आहारादि देवे और उसे जानता हुआ ले कर भोगवे ।

(२२) बाईसवें बोले - परीषह बाईस प्रकार के -

१ क्षुधा, २ तृषा, ३ शीत, ४ उष्ण, ५ डाँस-मच्छर, ६ अचेल (वस्त्र रहित या अल्प वस्त्र), ७ अरति, ८ स्त्री, ९ चर्या-


चलने का, १० निषद्या-स्थिर आसन लगा कर भयजनक जग बैठे रहने का, ११ शय्या-उपाश्रय का, १२ आक्रोश, १३ व (प्राणनाश), १४ याचना, १५ अलाभ (आवश्यक वस्तु का न मिलना), १६ रोग, १७ तृणस्पर्श, १८ जल (पसीना तथा मैल) १९ सत्कार-पुरस्कार, २० प्रज्ञा, २१ अज्ञान और २२ दर्शन परीषह

(२३) तेईसवें बोले - सूत्रकृतांग के २३ अध्ययन प्रथम श्रुतस्कंध के १६ अध्ययन तो सोलहवें बोल में हैं । दू श्रुतस्कंध के सात अध्ययन - १ पुण्डरीक कमल, २ क्रियास्थ ३ आहारपरिज्ञा, ४ प्रत्याख्यान परिज्ञा, ५ अनगारसुत्त, ६ आर्द्रकुम और ७ उदकपेढाल पुत्र ।

(२४) चौबीसवें बोले - देव चौबीस प्रकार के - १ भवनपति, ८ व्यन्तर (पहले से आठवें तक) ५ ज्योतिषी और वैमानिक - ये कुल २४ हुए ।

(२५) पच्चीसवें बोले - पांच महाव्रत की पच्च भावना।

पहले महाव्रत की पांच भावना - १ ईर्यासमिति भावना, मन-समिति भावना, ३ वचनसमिति भावना, ४ एषणासमिति भाव और ५ आदानभाण्ड-मात्र-निक्षेपना समिति भावना ।

दूसरे महाव्रत की पाँच भावना - १ बिना विचार वि बोलना नहीं २ क्रोध से बोलना नहीं ३ लोभ से बोलना नहीं भय से बोलना नहीं और ५ हास्य से बोलना नहीं ।

तीसरे महाव्रत की पाँच भावना - १ निर्दोष स्थानक य कर लेना, २ तृण आदि याच कर लेना, ३ स्थानक आदि की सीमा निर्धारण पूर्वक आज्ञा लेना, ४ रत्नाधिक की आज्ञा से त

आहार का संविभाग करके आहार करना और ५ उपाश्रय में रहे हुए संभोगी साधुओं से आज्ञा लेकर रहना तथा भोजनादि करना ।

चौथे महाव्रत की पाँच भावना - १ स्त्री, पशु, नपुंसक सहित स्थानक में ठहरना नहीं, २ स्त्री सम्बन्धी कथा वार्त्ता करना नहीं, ३ स्त्री के अंगोपांग, राग दृष्टि से देखना नहीं, ४ पहले के काम-भोग याद करना नहीं और ५ सरस तथा बल-वर्धक आहार करना नहीं ।

पाँचवें महाव्रत की पाँच भावना - १ अच्छे शब्द पर राग और बुरे शब्द पर द्वेष करना नहीं, वैसे ही ही २ रूप पर, ३ गंध पर ४ रस पर और ५ स्पर्श पर रागद्वेष नहीं करना ।

(२६) छब्बीसवें बोले - छब्बीस उद्देशक । दशाश्रुतस्कंध के १०, बृहत्कल्प के ६, और व्यवहार सूत्र के १० (इनमें साधु का विधिवाद है) ।

(२७) सत्तावीसवें बोले - साधु के सत्ताईस गुण- पांच महाव्रतों का पालन, पांच इन्द्रियों का निग्रह करना, चार कषाय का विजय करना (५+५+४ = १४) १५ भाव सत्य, १६ करण सत्य, १७ योग सत्य, १८ क्षमा, १९ वैराग्य, २० मनःसमाधारणता, २१ वचन-समाधारणता, २२ काय-समाधारणता, २३ ज्ञान, २४ दर्शन, २५ चारित्र, २६ वेदना सहिष्णुता और २७ मरण सहिष्णुता ।

(२८) अट्ठाईसवें बोले - आचार कल्प अट्ठाईस प्रकार का - १ एक मास का प्रायश्चित्त, २ एक मास और पांच दिन का, ३ एक मास और दस दिन का । इसी प्रकार पाँच-पाँच दिन बढ़ाते हुए पांच महीने तक कहना । इस प्रकार पच्चीस उद्‌घातिक



आरोपणा है, २६ अनुद्घातिक आरोपणा, २७ कृत्स्न (सम्पूर्ण) आरोपणा और २८ अकृत्स्न (अपूर्ण) आरोपणा ।

(२९) उनतीसवें बोले - **पाप सूत्र २९** - १ भूमिकम्प शास्त्र, २ उत्पात् शास्त्र, ३ स्वप्न शास्त्र, ४ अंतरिक्ष-आकाश शास्त्र, ५ अंगस्फुरण शास्त्र, ६ स्वर शास्त्र, ७ व्यजन-शरीर पर के तिल-मसादि चिह्न शास्त्र, ८ लक्षण शास्त्र । ये आठ सूत्र रूप आठ वृतिरूप और आठ वार्तिकरूप, कुल चौबीस हुए, २५ विकथा अनुयोग, २६ विद्या अनुयोग, २७ मंत्र अनुयोग, २८ योग अनुयोग और २९ अन्य तीर्थिक प्रवर्तनानुयोग ।

(३०) तीसवें बोले - महामोहनीय कर्म-बन्ध के तीस स्थान इस प्रकार है;-

१. त्रस जीव को जल में डुबा कर मारे ।

२. त्रस जीव को श्वास रूँध कर मारे ।

३. त्रस जीवों को बाड़े आदि में बन्द कर के मारे ।

४. तलवारादि शस्त्र से मस्तकादि अंगोपांग काटे ।

५. मस्तक पर गीला चमड़ा बांध कर मारे ।

६. ठगाई, धोखाबाजी, धूर्तता से दण्ड फलक आदि के द्वारा मार कर दूसरे का उपहास करे तथा विश्वासघात करे ।

७. कपट करके अपना दुराचार छिपावे, सूत्रार्थ छिपावे ।

८. आप कुकर्म करे और दूसरे निरपराधी मनुष्य पर आरोप लगावे तथा दूसरे की यशःकीर्ति घटाने के लिए झूठा कलंक लगावे ।

९. सत्य को दबाने के लिए मिश्र वचन बोले, सत्य का अपलाप करे तथा क्लेश बढ़ावे ।

१०. राजा का मन्त्री होकर राजा की लक्ष्मी हरण करना चाहे, राजा की रानी से कुशील सेवन करना चाहे, राजा के प्रेमीजनों के मन को पलटना चाहे तथा राजा को राज्याधिकार से हटाना चाहे ।

११. विषय-लम्पट हो कर भी अपने को कुँवारा बतावे ।

१२. ब्रह्मचारी नहीं होते हुए भी अपने को ब्रह्मचारी बतावे।

१३. जो नौकर, स्वामी की लक्ष्मी लूटे तथा लुटावे ।

१४. जिस पुरुष ने अपने को धनवान् इज्जतवान् अधिकारी बनाया, उस उपकारी से ईर्षा करे, बुराई करे, हलका बताने की चेष्टा करे, उपकार का बदला अपकार से देवे ।

१५. भरणपोषण करने वाले राजादि के धन में लुब्ध हो कर राजा को तथा ज्ञानदाता गुरु का हनन करे ।

१६. राजा, नगर-सेठ तथा मुखिया और बहुल यश वाले, इन तीनों में से किसी का हनन करे ।

१७. बहुत-से मनुष्यों का आधारभूत जो मनुष्य है, उसे हने।

१८. जो संयम लेने को तैयार हुआ है, उसकी संयम-रुचि हटावे तथा संयम लिये हुए को धर्म से भ्रष्ट करे ।

१९. तीर्थंकर के अवर्णवाद बोले ।

२०. तीर्थंकर प्ररूपित न्याय मार्ग का द्वेषी बन कर उस मार्ग की निन्दा करे तथा उस मार्ग से लोगों का मन दूर हटावे ।

२१. आचार्य, उपाध्याय, सूत्र विनय के सिखाने वाले पुरुषों की निन्दा करे, उपहास करे ।

२२. आचार्य, उपाध्याय के मन को आराधे नहीं तथा अहंकार भाव के कारण भक्ति नहीं करे ।



९ दर्शनावरणीय कर्म की नौ प्रकृति - १ निद्रा, २ निद्रानिद्रा, ३ प्रचला, ४ प्रचलाप्रचला, ५ स्त्यानगृद्धि, ६ चक्षुदर्शनावरणीय, ७ अचक्षुदर्शनावरणीय, ८ अवधिदर्शनावरणीय और ९ केवलदर्शनावरणीय ।

२ वेदनीय कर्म की दो प्रकृति - १ सातावेदनीय और २ असातावेदनीय ।

२ मोहनीय कर्म की दो प्रकृति - १ दर्शनमोहनीय और २ चारित्रमोहनीय ।

४ आयु कर्म की चार प्रकृति - १ नरकायु, २ तिर्यंचायु, ३ मनुष्यायु और ४ देवायु ।

२ नामकर्म की दो प्रकृति - १ शुभनाम और २ अशुभ नाम।

२ गोत्र कर्म की दो प्रकृति - १ उच्च गोत्र और २ नीच गोत्र ।

५ अंतराय कर्म की पांच प्रकृति - १ दानान्तराय २ लाभान्तराय ३ भोगांतराय ४ उपभोगांतराय और ५ वीर्यान्तराय ।

(३२) बत्तीसवें बोले-योग संग्रह बत्तीस प्रकार का-

मोक्ष साधना में सहायक, दोषों को दूर कर के शुद्धि करने वाले, ऐसे प्रशस्त योगों के संग्रह को 'योग संग्रह' कहते हैं । मन, वचन और काया की शुभ प्रवृत्ति रूप शुभ-योग के ३२ भेद समवायांग सूत्र में इस प्रकार कहे हैं ।

१ आलोचना - गुरु के समक्ष शुद्ध भावों से सच्ची आलोचना करना ।

२ निरपलाप - शिष्य या अन्य कोई अपने सामने आलोचना करे, तो वह किसी को नहीं कह कर अपने में ही सीमित रखना ।

१७ संवेग - संसार से अरुचि और मोक्ष के प्रति अनुराग होना - मुक्ति की अभिलाषा होना ।

१८ पणिधि - माया का त्याग करके निःशल्य होना, भावों को उज्ज्वल रखना ।

१९ सुविहित - उत्तम आचार का सतत पालन करते ही रहना ।

२० संवर - आस्रव के मार्गों को बन्द करके संवरवंत होना।

२१ दोष निरोध - अपने दोषों को हटा कर उनके मार्ग ही बन्द कर देना, जिससे पुनः दोष प्रवेश नहीं हो ।

२२ सर्व काम विरक्तता - पाँचों इन्द्रियों के अनुकूल विषयों से सदा विरक्त ही रहना ।

२३ मूल गुण प्रत्याख्यान - मूल गुण विषयक - हिंसादि त्याग के प्रत्याख्यान करना और उसमें दृढ़ रहना ।

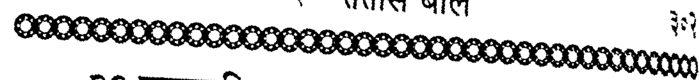
२४ उत्तरगुण प्रत्याख्यान - उत्तर गुण विषयक - तप आदि के प्रत्याख्यान करके शुद्धतापूर्वक पालन करना ।

२५ व्युत्सर्ग - शरीरादि द्रव्य और कषायादि भाव व्युत्सर्ग करना ।

२६ अप्रमाद - प्रमाद को छोड़ कर अप्रमत्त रहना ।

२७ समय साधना - काल के प्रत्येक क्षण को सार्थ करना, जिस समय जो अनुष्ठान करने का हो को व्यर्थ नहीं खोना ।

२८ ध्यान संवर योग - मन वचन संवरण करके ध्यान करना ।



२९ मारणान्तिक उदय – मृत्यु का समय अथवा मारणान्तिक कष्ट आ जाने पर भी दृढ़तापूर्वक साधना करते रहना ।

३० संयोग ज्ञान – इन्द्रियों अथवा विषयों का संयोग, अथवा बाह्य संयोग को ज्ञान से हेय जान कर त्यागना ।

३१ प्रायश्चित्त – लगे हुए दोषों का प्रायश्चित्त करके शुद्ध होना ।

३२ अन्तिम साधना – अन्तिम समय में संलेखना कर के पण्डित–मरण की आराधना करना ।

उपरोक्त योग–संग्रह में सभी प्रकार की उत्तम करणी का समावेश हो जाता है । इस प्रकार 'बत्तीस योग–संग्रह' से आत्मा को उज्ज्वल करने वाले संत प्रवर, संसार के लिए मंगल रूप हैं ।

(३३) तेतीसवें बोले – आशातना तेतीस प्रकार की-

१. गुरु या बड़ों के सामने शिष्य अविनय से चले ।

२. गुरु आदि के बराबर चले ।

३. गुर्वादि के पीछे भी अविनय से चले ।

४ से ६ – गुर्वादि के आगे–पीछे या बराबर अविनय से खड़ा रहे ।

७ से ९ – गुर्वादि के आगे पीछे या बराबर अविनय से बैठे ।

१०. बड़ों के साथ शिष्य स्थण्डिल जावे और उनसे पहले शौच कर्म कर के आगे चला आवे ।

११. गुरु के साथ शिष्य बाहर गया हो और पीछा लौटने पर ईर्यापथिकी पहले प्रतिक्रमे ।

१२. कोई पुरुष उपाश्रय में आवे तब उनसे गुरु से पहले ही शिष्य बोले ।



१३. रात्रि के समय जब गुरु कहे – 'अहो आर्य ! कौन नींद में है और कौन जाग रहा है ?' तब आप जागते हो, तो भी नहीं बोले ।

१४. आहारादि ला कर उसकी आलोचना पहले अन्य मुनि के सामने करे और बाद में गुरु के समक्ष करे ।

१५. आहारादि पहले अन्य मुनि को बतावे और बाद में गुरु को बतावे ।

१६. आहारादि के लिए पहले अन्य मुनि को आमन्त्रण दे और बाद में गुरु को दे ।

१७. गुरुजनों को पूछे बिना ही अन्य मुनियों को आहारादि देवे ।

१८. बड़ों के साथ भोजन करते समय, सरस मनोज्ञ आहार, स्वयं अधिक तथा शीघ्र करे ।

१९. गुर्वादि के पुकारने पर भी मौन रहे ।

२०. गुर्वादि के बुलाने पर अपने आसन पर बैठे ही कहे – "मैं यहाँ हूँ," परन्तु आसन छोड़ कर उनके पास जावे नहीं ?

२१. गुरु के बुलाने पर जोर से तथा अविनय से कहे कि 'क्या कहते हो ?'

२२. गुर्वादि कहे – 'हे शिष्य ! यह काम (वैयावच्चादि) तेरे लाभकारी है, इसे कर' तब कहे कि – 'यदि लाभकारी है, तो आप ही क्यों नहीं कर लेते' ।

२३. शिष्य, बड़ों के साथ कठोर-कर्कश भाषा बोले ।

२४. शिष्य, गुरुजन के साथ वैसे ही शब्द बोले, जैसे गुरुजन शिष्य के साथ बोलते हैं ।

२५. गुरुजन धर्मोपदेश देते हों तब सभा में ही कहे कि 'आप जो कहते हो वैसा उल्लेख कहां है ?'

२६. गुरुजन के व्याख्यान में कहे कि – 'आप तो भूलते हैं यह कहना सत्य नहीं है ।'

२७. गुरुजन के व्याख्यान को ध्यान से नहीं सुन कर उपेक्षा करे ।

२८. गुरुजन व्याख्यान देते हों, तब सभा में भेद डालने के लिए कहे – ''महाराज ! गोचरी का या अमुक काम का समय हो गया है ।''

२९. गुरुजन व्याख्यान देते हों, तब श्रोताजन के मन को व्याख्यान से हटाने की चेष्टा करे ।

३०. गुरुजन का व्याख्यान पूरा नहीं हुआ हो, उसके पूर्व ही आप व्याख्यान शुरू कर दे ।

३१. गुर्वादि की शय्या–आसन को पांव से ठुकरावे ।

३२. बड़ों की शय्या पर आप खड़ा रहे, बैठे, सोए ।

३३. गुरु के शयन आसन से अपना शयन आसन ऊंचा क या बराबर (समान) करे और उस पर सोए, बैठे तो आशातना लगे।

१०२ बोल का बासठिया

श्री पन्नवणा सूत्र के तीसरे पद में २२ द्वार का वर्णन है । वह बासठिया युक्त इस प्रकार है; –

द्वार – १ जीव, २ गति, ३ इन्द्रिय, ४ काय, ५ योग, ६ वेद, ७ कषाय, ८ लेश्या, ९ दृष्टि, १० सम्यक्त्व, ११ ज्ञान, १२ दर्शन, १३ संयम, १४ उपयोग, १५ आहार, १६ भाषक, १७ परित्त, १८ पर्याप्त, १९ सूक्ष्म, २० संज्ञी, २१ भव्य और २२ चरम ।

जीवद्वार

मार्गणा	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
१. समुच्चय जीव में	१४	१४	१५	१२	६
२. नरक में	३	४	११	९	३
३. तिर्यंच में	१४	५	१३	९	६
४. मनुष्य में	३	१४	१५	१२	६
५. देव में	३	४	११	९	६
६. सिद्ध में	०	०	०	२	०

अल्पबहुत्व – सब से थोड़े मनुष्य, उनसे नारकी असंख्यात गुण, उनसे देव असंख्यात गुण, उनसे सिद्ध अनंत गुण, उनसे तिर्यंच अनन्त गुण और उनसे समुच्चय जीव



* इति-

गति द्वार

मार्गणा	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश
१. नरक गति में	३	४	११	९	३
२. तिर्यंच गति में	१४	५	१३	९	६
३. तिर्यंचिनी में	२	५	१३	९	६
४. मनुष्य गति में	३	१४	१५	१२	६
५. मनुष्यिनी में	२	१४	१३	१२	६
६. देव गति में	३	४	११	९	६
७. देवी में	२	४	११	९	४
८. सिद्ध गति में	०	०	०	२	०

अल्पबहुत्व – सबसे थोड़ी मनुष्यिनी, उनसे मनुष्य असंख्
गुण, उनसे नारकी असंख्यात गुण, उनसे तिर्यंचिनी असंख्यात ग
उनसे देव असंख्यात गुण, उनसे देवी संख्यात गुण, उनसे सि
अनन्त गुण और उनसे तिर्यंच अनन्त गुण हैं ।

इन्द्रिय द्वार

मार्गणा	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश
१. सइन्द्रिय में	१४	१२	१५	१०	६
२. एकेन्द्रिय में	४	१	५	३	४
३. बेइन्द्रिय में	२	२	४	५	३
४. तेइन्द्रिय में	२	२	४	५	३
५. चौरिन्द्रिय में	२	२	४	६	३
६. पंचेन्द्रिय में	४	१२	१५	१०	६
७. अनिन्द्रिय में	१	२	७	२	१



अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े पंचेन्द्रिय, उनसे चौरेन्द्रिय ोषाधिक, उनसे तेइन्द्रिय विशेषाधिक, उनसे बेइन्द्रिय विशेषाधिक, से अनिन्द्रिय अनन्त गुण, उनसे एकेन्द्रिय अनन्त गुण और से सइन्द्रिय विशेषाधिक ।

काय द्वार

मार्गणा	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
सकाय में	१४	१४	१५	१२	६
पृथ्वीकाय में	४	१	३	३	४
अप्काय में	४	१	३	३	४
तेऊकाय में	४	१	३	३	३
वायुकाय में	४	१	५	३	३
वनस्पतिकाय में	४	१	३	३	४
त्रसकाय में	१०	१४	१५	१[illegible]	६
अकाय में	०	०	०	२	०

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े त्रसकाय, उनसे तेऊकाय असंख्यात ग, उनसे पृथ्वीकाय विशेषाधिक, उनसे अप्काय विशेषाधिक, नसे वायुकाय विशेषाधिक, उनसे अकाय अनन्त गुण, उनसे नस्पतिकाय अनन्त गुण, उनसे सकाय विशेषाधिक है ।

योग द्वार

मार्गणा	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
. सयोगी में	१४	१३	१५	१२	६
. मन योगी में	१	१३	१४	१२	६

मार्गणा	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
३. वचन योगी में	५	१३	१४	१२	६
४. काययोगी में	१४	१३	१५	१२	६
५. अयोगी में	१	१	०	२	०

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े मन-योगी, उनसे वचन-योगी असंख्यात गुण, उनसे अयोगी अनन्त गुण, उनसे काय-योगी अनन्त गुण और उनसे सयोगी विशेषाधिक हैं ।

वेद द्वार

मार्गणा	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
१. सवेदी में	१४	९	१५	१०	६
२. पुरुषवेद में	२	९	१५	१०	६
३. स्त्रीवेद में	२	९	१३	१०	६
४. नपुंसक वेद में	१४	९	१५	१०	६
५. अवेदी में	१	६	११	९	१

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े पुरुषवेदी, उनसे स्त्रीवेदी संख्यात गुण, उनसे अवेदी अनन्त गुण, उनसे नपुंसकवेदी अनंत गुण, उनसे सवेदी विशेषाधिक है ।

कषाय द्वार

मार्गणा	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
१. सकषायी में	१४	१०	१५	१०	६
२. क्रोध कषाय में	१४	९	१५	१०	६



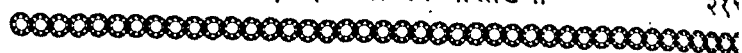
मार्गणा	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
३. मान कषाय में	१४	९	१५	१०	६
४. माया कषाय में	१४	९	१५	१०	६
५. लोभ कषाय में	१४	१०	१५	१०	६
६. अकषायी में	१	४	११	९	१

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े अकषायी, उनसे मानी अनन्त गुण, उनसे क्रोधी विशेषाधिक, उनसे मायी विशेषाधिक, उनसे लोभी विशेषाधिक और उनसे सकषायी विशेषाधिक हैं ।

लेश्या द्वार

मार्गणा	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
१. सलेशी में	१४	१३	१५	१२	६
२. कृष्ण लेशी में	१४	६	१५	१०	१
३. नील लेशी में	१४	६	१५	१०	१
४. कापोत लेशी में	१४	६	१५	१०	१
५. तेजो लेशी में	३	७	१५	१०	१
६. पद्म लेशी में	२	७	१५	१०	१
७. शुक्ल लेशी में	२	१३	१५	१२	१
८. अलेशी में	१	१	०	२	०

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े शुक्ललेशी, उनसे पद्मलेशी संख्यात गुण, उनसे तेजोलेशी संख्यात गुण, उनसे अलेशी अनन्त गुण, उनसे कापोतलेशी अनन्त गुण, उनसे नीललेशी विशेषाधिक, उनसे कृष्णलेशी विशेषाधिक और उनसे सलेशी विशेषाधिक हैं ।



अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े अवधिदर्शनी, उनसे चक्षुदर्शनी असंख्यात गुण, उनसे केवलदर्शनी अनन्त गुण और उनसे अचक्षुदर्शनी अनन्त गुण हैं ।

संयम द्वार

मार्गणा	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
१. समुच्चय संयति में	१	९	१५	९	६
२. सामायिक संयत में	१	४	१४	७	६
३. छेदोपस्थापनीयसंयत में	१	४	१४	७	६
४. परिहारविशुद्धि संयत में	१	२	९	७	३
५. सूक्ष्म-संपराय संयत में	१	१	९	७	१
६. यथाख्यात संयत में	१	४	११	९	१
७. संयतासंयत में	१	१	१२	६	६
८. असंयत में	१४	४	१३	९	६
९. नोसंयत नोअसंयत- नो संयतासंयत में	०	०	०	२	०

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े सूक्ष्म-संपराय संयत, उनसे परिहार-विशुद्धि संयत संख्यात गुण, उनसे यथाख्यात संयत संख्यात गुण, उनसे छेदोपस्थापनीय संख्यात गुण, उनसे सामायिक संयत संख्यात गुण, उनसे समुच्चय संयत विशेषाधिक, उनसे संयतासंयत असंख्य गुण, उनसे नो-संयत नो असंयत नो-संयतासंयत अनन्त गुण और उनसे असंयत अनन्त गुण हैं ।



उपयोग द्वार

मार्गणा	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
१. साकार उपयोग में	१४	१४	१५	१२	६
२. अनाकारउपयोग में	१४	१३	१५	१२	६

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े अनाकार उपयोगी और उनसे साकार उपयोगी संख्यात गुण ।

आहारक द्वार

मार्गणा	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
१. आहारक में	१४	१३	१४	१२	६
२. अनाहारक में	८	५	१	१०	६

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े अनाहारक, उनसे आहारक असंख्यात गुण हैं ।

भाषक द्वार

मार्गणा	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
१. भाषक में	५	१३	१४	१२	६
२. अभाषक में	१०	५	५	११	६

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े भाषक, उनसे अभाषक अनन्त गुण हैं ।

परित्त द्वार

मार्गणा	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
१. परित्त में	१४	१४	१५	१२	६

[illegible]

२. अपरित्त में	१४	१	१३	६	६
३. नो-परित्त नो-अपरित्त में	०	०	०	२	०

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े परित्त, उनसे नो-परित्त नो-अपरित्त अनन्त गुण और उनसे अपरित्त अनन्त गुण हैं ।

पर्याप्त द्वार

मार्गणा	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
१. पर्याप्त में	७	१४	१५	१२	६
२. अपर्याप्त में	७	३	५	९	६
३. नो-पर्याप्त नो-अपर्याप्त में	०	०	०	२	०

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े नो-पर्याप्त नो-अपर्याप्त, उनसे अपर्याप्त अनन्त गुण और उनसे पर्याप्त संख्यात गुण हैं ।

सूक्ष्म द्वार

मार्गणा	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
१. सूक्ष्म में	२	१	३	३	३
२. बादर में	१२	१४	१५	१२	६
३. नो-सूक्ष्म नो-बादर में	०	०	०	२	०

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े नो-सूक्ष्म नो-बादर, उनसे बादर अनन्त गुण और उनसे सूक्ष्म असंख्यात गुण हैं ।

संज्ञी द्वार

मार्गणा	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
१. संज्ञी में	२	१२	१५	१०	६
२. असंज्ञी में	१२	२	६	६	४
३. नो-संज्ञी नो-असंज्ञी में	१	२	७	२	१

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े संज्ञी, उनसे नो-संज्ञी, नों-असंज्ञी अनन्त गुण और उनसे असंज्ञी अनन्त गुण हैं ।

भव्य द्वार

मार्गणा	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
१. भव्य में	१४	१४	१५	१२	६
२. अभव्य में	१४	१	१३	६	६
३. नो-भव्य नो-अभव्य में	०	०	०	२	०

अल्पबहुत्व - सबसे थोड़े अभव्य, उनसे नो-भव्य नो-अभव्य अनन्त गुण और उनसे भव्य अनन्त गुण हैं ।

चरम द्वार

मार्गणा	जीव	गुणस्थान	योग	उपयोग	लेश्या
१. चरम में	१४	१४	१५	१२	६
२. अचरम में	१४	१	१३	८	६

अल्पबहुत्व-सबसे थोड़े अचरम, उनसे चरम अनन्त गुण हैं।

गुणस्थान स्वरूप

गुणस्थानों ❀ पर उन्नतीस द्वार हैं । वे इस प्रकार हैं -

१ नाम २ लक्षण ३ स्थिति ४ क्रिया ५ सत्ता ६ बंध ७ उदय ८ उदीरणा ९ निर्जरा १० भाव ११ कारण १२ परीषह १३ आत्मा १४ जीव के भेद १५ गुणस्थान १६ योग १७ उपयोग १८ लेश्या १९ हेतु २० मार्गणा २१ ध्यान २२ दण्डक २३ जीवयोनि २४ निमित्त २५ चारित्र २६ आकर्ष २७ समकित २८ अन्तर और २९ अल्पबहुत्व ।

१ नाम द्वार

गुणस्थानों के नाम - १ मिथ्यात्व २ सास्वादन ३ मिश्र ४ अविरत सम्यग्दृष्टि ५ देशविरत ६ प्रमत्त-संयत ७ अप्रमत्त-संयत ८ निवृत्ति-बादर ✪ ९ अनिवृत्ति-बादर ❖ १० सूक्ष्म सम्पराय ११ उपशान्त मोहनीय १२ क्षीण-मोहनीय १३ सयोगी केवली और १४ अयोगी केवली ।

❀ आत्मा के ज्ञान-दर्शन चारित्र आदि गुणों की शुद्धि-अशुद्धि और -अपकर्ष अवस्था के वर्गीकरण को 'गुणस्थान' कहते हैं ।

✪ निवृत्ति बादर चारित्र का अपूर्वकरण अथवा जो बादर दर्शनमोह से निवृत्त हो गए ।

❖ अनिवृत्ति बादर-जो बादर चारित्र मोह से निवृत्त नहीं हुए ।

२ लक्षण द्वार

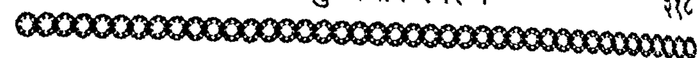
१ पहले मिथ्यात्व गुणस्थान का लक्षण - जिनेश्वर भगवान् की वाणी न्यूनाधिक या विपरीत श्रद्धे या प्ररूपे, जिन-मार्ग पर दुष्ट परिणाम रखे, हिंसा में धर्म माने या प्ररूपे, कुदेव कुगुरु, और कुशास्त्र पर आस्था रखे । अथवा तत्त्व श्रद्धा का अभाव जीव के ऐसे भाव को पहला - 'मिथ्यात्व गुणस्थान' कहते हैं ।

पहले गुणस्थान का फल - कर्म रूपी डंडे से आत्मा रूपी गेंद, चार गति चौबीस दण्डक और चौरासी लाख जीवयोनियों में बारम्बार परिभ्रमण कर दुःख भोगती रहती है ।

२ दूसरे गुणस्थान का लक्षण - सम्यक्त्व का आस्वाद मात्र रहना । जैसे - किसी ने खीर का भोजन किया और बाद में वमन कर दिया, तो उसे कुछ गुड़चटा स्वाद रहता है । इसी प्रकार प्राप्त सम्यक्त्व छोड़ कर मिथ्यात्व में प्रवेश करने के पूर्व की दशा में जो अवस्था होती है, उसे 'सास्वादन' गुणस्थान कहते हैं । अथवा जैसे - घंटे से गंभीर शब्द निकल चुकने के बाद उसका रणकार (प्रतिध्वनि) रह जाती है, उसके समान, अथवा आत्मा रूपी आम्र-वृक्ष की परिणाम रूपी डाली से, मोह ❊ रूपी वायु चलने से, समकित रूपी फल टूट गया, परन्तु मिथ्यात्व रूपी पृथ्वी पर नहीं पहुँचा । वह बीच ही में हैं, तब तक के परिणामों को 'सास्वादन गुणस्थान' कहते हैं ✿ ।

❊ अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ

✿ सास्वादन गुणस्थान उपशम समकित
सकता है, अन्य को नहीं । यह एक भव में दो बार
पांच बार से अधिक नहीं आता है ।



दूसरे गुणस्थान का फल – जैसे किसी को एक करोड़ रूपया ऋण देना था, उसने उसमें से निन्यानवे लाख निन्यानवे हजार नौ सौ साढ़े निन्यानवे (९९,९९,९९९॥) रूपये से कुछ अधिक तो चुका दिये, केवल कुछ कम आधा रूपया देना शेष रहा। उलटे का सुलटा हुआ, कृष्णपक्षी से शुक्लपक्षी हुआ, इसी भांति दूसरे गुणस्थान वाले जीव का उत्कृष्ट देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्तन संसार भोगना शेष रहा ।

३ तीसरे गुणस्थान का लक्षण – सम्यक्त्व और मिथ्यात्व से मिश्रित, श्रीखंड के समान मीठे और खट्टे स्वाद जैसा । नालिकेर द्वीप के मनुष्य का दृष्टान्त । जिस द्वीप में खाने के लिये सिर्फ नारियल ही होते हैं, उसे नालिकेर द्वीप कहते हैं । वहाँ के मनुष्यों ने न अन्न को देखा है न उसके विषय में कुछ सुना ही है अतएव उनको अन्न में रुचि नहीं होती और न द्वेष ही होता है । इस प्रकार जब मिश्र मोहनीय कर्म का उदय रहता है तब जीव को जैन धर्म में प्रीति नहीं होती और अप्रीति भी नहीं होती अर्थात् श्री वीतराग ने जो धर्म कहा है वही सच्चा है, इस प्रकार एकान्त श्रद्धा रूप प्रेम नहीं होता और वह धर्म झूठा है, अविश्वसनीय है इस प्रकार अरुचि रूप द्वेष भी नहीं होता । अर्थात् जो सर्वज्ञ के मार्ग को भी सच्चा समझे और अन्य मार्गों को भी सच्चा समझे, वह तीसरे मिश्र गुणस्थान वाला है ✤ । वह सभी देव, सभी गुरु, सभी धर्म और सभी शास्त्र को समान मानता है ।

✤ मिश्र गुणस्थान, मिश्रमोहनीय प्रकृति के उदय से होता है । यह अन्तर्मुहूर्त्त से अधिक नहीं होता । इसमें न तो नवीन आयु का बन्ध होता है और न मरण होता है । सम्यक्त्व या मिथ्यात्व को प्राप्त होने के बाद ही आयु का बन्ध या मरण होता है ।



अथवा - सम्यक्त्व और मिथ्यात्व में तटस्थ वृत्ति ।

तीसरे गुणस्थान का फल - तीसरे गुणस्थान वाला भी अनादि काल से उलटा था, सो सुलटा हुआ, कृष्णपक्षी से शुक्लपक्षी हुआ, उड़द के ऊपर का कालापन हट कर मोगर जैसा उजला हुआ । उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्तन संसार में परिभ्रमण करना शेष रहा । जिस प्रकार किसी मनुष्य को एक करोड़ रूपया ऋण देना था । उसमें से निन्यानवे लाख निन्यानवे हजार नौ सौ, साढ़े निन्यानवे से कुछ अधिक रूपये तो दे चुका, परन्तु कुछ कम आधा रूपया देना रहा । इसी प्रकार थोड़ा संसार परिभ्रमण करना शेष रहा ।

४ चौथे गुणस्थान का लक्षण - सात प्रकृतियों का क्षयोपशम आदि करने पर जीव की जो अवस्था होती है, उसे चौथा 'अविरत-सम्यग्दृष्टि गुणस्थान' कहते हैं । वे सात प्रकृतियाँ ये हैं - १ अनन्तानुबन्धी क्रोध २ मान ३ माया ४ लोभ ५ सम्यक्त्व मोहनीय ✦ ६ मिश्र-मोहनीय और ७ मिथ्यात्व मोहनीय । कुदेव, कुगुरु, कुधर्म कुशास्त्र की आस्था रखना - 'मिथ्यात्व मोहनीय' है । सभी देव, सभी गुरु, सभी धर्म और सभी शास्त्रों को समान समझने को 'मिश्र-मोहनीय' कहते हैं । जिस प्रकार कूटे हुए कोद्रव धान्य के छिलकों में मादक शक्ति पूर्ण नहीं होती, उसी प्रकार जिस कर्म के द्वारा सम्यक्त्व गुण का पूर्ण

✦ क्षयोपशम समकित में सम्यक्त्व मोह
...ता है - डोशी ।

हो, परन्तु उसमें चल ❀ मल ❖ अगाढ़ ✱ दोष उत्पन्न हों, उसे – 'सम्यक्त्व मोहनीय' कहते हैं ।

सात प्रकृतियों के नौ भंग ✪ होते हैं – १ चार अनन्तानुबन्धी प्रकृतियों का क्षय हो, तीन का उपशम हो । २ पाँच प्रकृतियों का क्षय हो, दो का उपशम हो । ३ छह प्रकृतियों का क्षय और एक का उपशम हो । इन तीनों भंगों को 'क्षयोपशम समकित' कहते हैं । ४ चार प्रकृतियों का क्षय, दो का उपशम और एक का वेदन हो । ५ पाँच प्रकृतियों का क्षय, एक का उपशम और एक का वेदन हो । इन दोनों भंगों को 'क्षयोपशम वेदक सम्यक्त्व' कहते हैं । ६ छह प्रकृतियों का क्षय और एक के वेदन को 'क्षायिक वेदक समकित' कहते हैं । ७ छह प्रकृतियों का उपशम हो और एक को वेदे, उसे 'उपशम-वेदक समकित' कहते हैं । ८ सात प्रकृतियों का उपशम हो, उसे 'उपशम समकित' कहते हैं । ९ सातों प्रकृतियों का क्षय हो, उसे 'क्षायिक समकित' कहते हैं ।

❀ श्री शान्तिनाथजी शान्ति करने में, पार्श्वनाथजी परिचय देने में समर्थ हैं, इस प्रकार अनेक विषयों में चलायमान होने को 'चल दोष' कहते हैं ।

❖ छद्मस्थपन की तरंग से सम्यक्त्व में मलिनता आ जाने को 'मल दोष' कहते हैं ।

✱ यह मेरा शिष्य है, यह उनका, इत्यादि भ्रम उत्पन्न करने वाले दोष को 'अगाढ़ दोष' कहते हैं । अगाढ़ अर्थात् कुछ शिथिल ।

✪ एक-एक भंग से चौथा गुणस्थान प्राप्त हो जाता है । कोई जीव पहले भंग से, कोई दूसरे से और कोई तीसरे आदि से चौथे गुणस्थान में आता है ।



चौथे गुणस्थान में आया हुआ जीव जीवादिक नौ पदार्थों का जानकार होता है । द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का जानकार होवे, नवकारसी आदि वर्षी तप को उपादेय जाने, श्रद्धा करे, प्ररूपणा करे, परन्तु पालन नहीं कर सकता, क्योंकि अविरत सम्यग्दृष्टि ✡ है।

फल - यदि सम्यक्त्व प्राप्ति के पूर्व आयु का बन्ध नहीं हुआ हो, तो इस गुणस्थान में सात बोलों का बन्ध नहीं हो सकता- १ नारकी २ तिर्यंच ३ भवनपति ४ वाणव्यन्तर ५ ज्योतिषी ६ स्त्रीवेद और ७ नपुंसकवेद । यदि पहले बन्ध हो गया हो तो भोगना ही पड़ता है । जैसे श्रेणिक महाराजा को भोगना पड़ा ।

५ देशविरति गुणस्थान का लक्षण - पहले कही हुई सात प्रकृतियाँ और अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ, ये चार इस प्रकार ग्यारह प्रकृतियों का क्षयोपशमादि करने से जो गुणस्थान होता है, वह पाँचवां गुणस्थान है । इस गुणस्थान में आया हुआ जीव, जीवादिक नौ पदार्थों का जानकार होता है । नवकारसी आदि से लेकर वर्षी तप आदि जानता है, श्रद्धान करता है, प्ररूपता है और शक्ति अनुसार प्रत्याख्यान करता है । एक प्रत्याख्यान से लेकर श्रावक के बारह व्रत, ग्यारह प्रतिमाएँ तक पालन करे यावत् मारणांतिक संलेखना संथारा अनशन करे ।

फल - इस गुणस्थान का आराधक जीव, जघन्य तीसरे भव उत्कृष्ट सात-आठ अर्थात् पन्द्रह भवों में मोक्ष भव वैमानिक देवों के और आठ मनुष्य के करता है

✡ अप्रत्याख्यानी कषाय के उदय से एक कर सकता ।



६ प्रमत्त संयत गुणस्थान का लक्षण - पूर्व कही हुई ग्यारह प्रकृतियाँ और ४ प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ। इस प्रकार पन्द्रह प्रकृतियों के क्षयोपशमादि से जो गुणस्थान हो, उसे छठा 'प्रमत्त-संयत गुणस्थान' कहते हैं । इस गुणस्थान वाला नौ तत्त्व और द्रव्य क्षेत्र काल भाव का जानकार होता है, नवकारसी आदि वर्षी तप जाने श्रद्धे प्ररूपे और पालन करे ㊉ ।

फल - छठे गुणस्थान का आराधक जीव जघन्य उसी भव में और उत्कृष्ट सात-आठ भवों में मोक्ष जाता है ।

७ अप्रमत्त संयत गुणस्थान का लक्षण - पाँच प्रमादों के छोड़ने से जो गुणस्थान हो, वह 'अप्रमत्त ★ गुणस्थान' है । पाँच प्रमाद - १ मद्य २ विषय ३ कषाय ४ निद्रा और ५ विकथा । इस गुणस्थान वाला, जीवादिक नव तत्त्वों का तथा द्रव्य क्षेत्र काल भाव का जानकार होवे, नवकारसी आदि तप जाने, श्रद्धा करे, प्ररूपणा करे और फरसे ।

फल - इस गुणस्थान का आराधक जघन्य उसी भव में, मध्यम तीसरे भव में और उत्कृष्ट सात-आठ भवों में मोक्ष जाता है ।

८ निवृत्तिबादर गुणस्थान का लक्षण - अपूर्वकरण-शुक्ल ध्यान आने पर जो गुणस्थान हो, उसे आठवाँ 'अपूर्वकरण' (जो

㊉ इस गुणस्थान में आते ही 'साधु' संज्ञा होती है । सत्तरह का संयम पालन होता है । इसे 'सर्वविरति गुणस्थान' भी कहते हैं ।

★ सातवें गुणस्थान की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है । इसमें केवल संज्वलन कषाय और नो-कषाय का मन्द उदय रह जाता है । ध्यान की मुख्यता है ।



परिणाम पहले कभी न हुए हों) गुणस्थान कहते हैं । यहाँ से उपशम श्रेणी और क्षपक श्रेणी प्रारम्भ होती है । उपशम श्रेणी पडिवाई ✪ है और क्षपक श्रेणी अप्रतिपाती है । उपशम श्रेणी का लक्षण पहले कही हुई १५ और छह हास्यादिक (१ हास्य २ रति ३ अरति ४ भय ५ शोक ६ दुगुंछा) इन इक्कीस प्रकृतियों का उपशम करे, तो आठवें गुणस्थान से नौवें गुणस्थान तक जाता है और पूर्वोक्त इक्कीस तथा १ स्त्रीवेद २ पुरुषवेद ३ नपुंसकवेद ४ संज्वलन क्रोध ५ मान और ६ माया - ये छह मिलाकर सत्ताईस प्रकृतियों का उपशम करे, तो दसवें गुणस्थान में आता है । पूर्व कही हुई सत्ताईस और एक संज्वलन लोभ - इन अट्ठाईस प्रकृतियों का उपशम करने से जीव को ग्यारहवां गुणस्थान प्राप्त होता है । ग्यारहवें गुणस्थान में काल करे, तो अनुत्तर विमान में जाता है व उत्कृष्ट ३३ सागरोपम की ही स्थिति पाता है । ग्यारहवें गुणस्थान की स्थिति पूरी होने पर उपशम हुए संज्वलन लोभ का उदय होने पर नीचे गिर जाता है । जैसे अग्नि के ऊपर राख आ जाती है, परन्तु राख के हट जाने से लपटें उठने लगती है । या जैसे कोठरी

✪ पडिवाई - प्रतिपाति (गिरने वाला) । क्योंकि उपशमश्रेणी वाला ग्यारहवें गुणस्थान से ऊपर नहीं पहुँच कर नीचे गिर जाता है या काल कर जाता है और क्षपक श्रेणी वाला दसवें गुणस्थान से सीधा बारहवें गुणस्थान में पहुँच जाता है, ग्यारहवें में नहीं जाता । बारहवें गुणस्थान से फिर नीचे नहीं उतरता । वह निश्चय ही मोक्ष लाभ करता है ।

नोट - जिस भव में उपशम श्रेणी होती है, उस भव में क्षपक श्रेणी नहीं करता-भगवती सूत्र ९ वाँ शतक ३१ वाँ उद्देशक । कर्मग्रंथ की मान्यता अलग है ।



में कोठरी और उस कोठरी में भी फिर कोठरी होने से आगे का रास्ता वन्द हो जाता है, वहाँ से उसे वापस लौटना ही पड़ता है। इसी प्रकार ग्यारहवें गुणस्थान से वापस लौटना ही पड़ता है। लौटकर जीव दसवें गुणस्थान में भी आता, नौवें गुणस्थान में आता यावत् कोई पहले गुणस्थान में भी आता है ।

क्षपक श्रेणी का लक्षण - जीव इक्कीस प्रकृतियों का क्षय करके नौवें गुणस्थान में आता है, सत्ताईस प्रकृतियों का क्षय करके दसवें गुणस्थान में आता है, अट्ठाईस प्रकृतियों का क्षय करके औ ग्यारहवें गुणस्थान को छोड़कर, सीधा बारहवें गुणस्थान में आ है । वारहवें गुणस्थान के अन्तिम समय में शेष ज्ञानावर दर्शनावरण, अंतराय-इन तीन कर्मों का क्षय करके जीव तेर गुणस्थान में आता है । तेरहवें गुणस्थान में दस बोल ❖ पाये ज हैं - १ अनन्त दान-लब्धि २ अनन्त लाभ-लब्धि ३ अनन्त भो लब्धि ४ अनन्त उपभोग-लब्धि ५ अनन्त वीर्य-लब्धि ६ केवल ७ केवलदर्शन ८ क्षायिक-समकित ✦ ९ शुक्लध्यान और यथाख्यात-चारित्र ।

तेरहवें गुणस्थान में जीव मन, वचन और काया के योग निरोध (रोक) करके चौदहवें गुणस्थान में आता है । चौ

❖ ये दस बोल, घन-घाती कर्मों के क्षय होने से ही प्राप्त हों ५ की पाँच लब्धियाँ अन्तराय कर्म के क्षय से, केवलज्ञान ज्ञा के क्षय से, केवलदर्शन दर्शनावरण के क्षय से और शेष मोहनीय से प्राप्त होते हैं ।

✦ ८ से १० तक के ३ गुण पहले से ही प्राप्त हो जाते हैं ।

गस्थान में पाँच लघु अक्षर ✿ के उच्चारण जितनी स्थिति में कर १ वेदनीय २ आयुष्य ३ नाम और ४ गोत्र - ये चार अघाती कर्म का क्षय करके अफुसमाण (स्पर्श न करते हुए) गति से, एक समय की अविग्रह ✚ गति से औदारिक, तैजस् और कार्मण शरीर को छोड़कर सिद्ध गति को प्राप्त होता है । सिद्ध गति में जन्म नहीं, मरण नहीं, जरा नहीं, रोग नहीं, शोक नहीं, दुःख नहीं, दारिद्रय नहीं, मोह नहीं, माया नहीं, कर्म नहीं, काया नहीं, चाकर नहीं, ठाकुर नहीं, गुरु नहीं, चेला नहीं, भूख नहीं, प्यास नहीं, ज्योति ★ में ज्योति विराजमान है । अनन्त सुखों में लीन, अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त क्षायिक-सम्यक्त्व, निराबाध अटल अवगाहना, अमूर्ति, अगुरु-लघु, अनन्त आत्मसामर्थ्य सहित विराजमान होते हैं ।

३ स्थिति द्वार ❁

पहले गुणस्थान के तीन भंग हैं - १ अनादि-अपर्यवसित ❋ - जिसकी आदि भी नहीं और अन्त भी नहीं, २ अनादि

✿ अ, इ, उ, ऋ, लृ ।

✚ बिना मोड़ वाली गति से ।

★ अवगाहना गुण के कारण परस्पर एक दूसरे सिद्ध की स्थिति का विरोध नहीं करते - 'एक माँही अनेक राजे, अनेक माँही एकीकं । एक अनेक की नाहि संख्या, नमो सिद्ध निरंजनं ।'

❁ जीव का उन उन गुणस्थानों में रहना 'स्थिति' कहलाता है ।

❋ यह भंग अभव्य जीव की अपेक्षा से हैं, क्योंकि वे अनादिकाल से मिथ्यात्वी हैं और सदैव मिथ्यात्वी ही रहेंगे ।

सपर्यवसित ✠ - जिसकी आदि नहीं, किन्तु अन्त है, ३ सादि सपर्यवसित ✺ - जिसकी आदि भी है और अन्त भी है। तीसरे भंग की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन अर्ध पुद्गल परावर्तन की है ।

दूसरे गुणस्थान की स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट छह आवलिका की है ।

तीसरे और बारहवें गुणस्थान की स्थिति जघन्य उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

चौथे गुणस्थान की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट तेतीस सागर ✪ झाझेरी है ।

पाँचवें और तेरहवें गुणस्थान की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त और उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व की है ।

छठे गुणस्थान की जघन्य स्थिति एक समय की, उत्कृष्ट देशोन करोड़ पूर्व की है ।

सातवें, आठवें, नौवें, दसवें और ग्यारहवें गुणस्थान की स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त्त की है ।

चौदहवें गुणस्थान की स्थिति मध्यम रीति से पाँच लघु अक्षर के उच्चारण करने में जितना काल लगे उतनी है ।

✠ यह भंग अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य जीव की अपेक्षा से हैं ।

✺ यह तीसरा भंग प्रतिपाति सम्यक्त्वी की अपेक्षा से हैं, जो सम्यक्त्व को प्राप्त करके फिर मिथ्यात्व में आया हो ।

✪ पंच संग्रह (चन्द्रऋषिजी द्वारा रचित) में चौथे गुणस्थान की स्थिति साधिक ३३ सागरोपम बताई है, यही उचित प्रतीत होती है ।

४ क्रिया द्वार

पच्चीस क्रियाओं के नाम - १ काइया २ अहिगरणिया ३ पाउसिया ४ पारियावणिया ५ पाणाइवाइया ६ आरम्भिया ७ परिग्गहिया ८ मायावत्तिया ९ मिच्छादंसणवत्तिया १० अपच्चक्खाण ११ दिट्ठिया १२ पुट्ठिया १३ पाडुच्चिया १४ सामंतोवणिवाइया १५ नेसत्थिया १६ साहत्थिया १७ आणवणिया १८ वेदारणिया १९ अणाभोगवत्तिया २० अणवकंखवत्तिया २१ पओइया २२ सामुदाणिया २३ पेज्जवत्तिया २४ दोसवत्तिया और २५ ईरियावहिया ।

पहले, दूसरे और तीसरे गुणस्थान में ईरियावहिया के सिवाय चौबीस ✱ क्रियाएँ पाई जाती है । चौथे में मिथ्यात्व को भी छोड़कर तेईस क्रियाएँ पाई जाती है । पाँचवें में अविरति को छोड़कर बाईस क्रियाएँ हैं। छठे गुणस्थान में ✣ परिग्गहिया को

✱ भगवती सूत्र शतक ३० वें (समवसरण) में विकलेन्द्रियों में सास्वादन गुणस्थान होते हुए भी क्रियावादी समवसरण नहीं माना है, पन्नवणा सूत्र पद २२ वें में भी विकलेन्द्रियों में नियम से मिथ्यात्व की क्रिया बतलायी है । अतः इन पाठों से ऐसा प्रतीत होता है कि मिथ्यात्वाभिमुख होने से एवं अनन्तानुबंधी कषाय का उदय होने से मिथ्यात्व की क्रिया लगना ही अधिक संभव लगता है ।

तीसरे गुणस्थान में मिश्र परिणाम होते हैं । अतः इसमें जो मिथ्यात्व का अंश है, उसकी अपेक्षा से मिथ्यात्व क्रिया बतलाई है ।

कारण द्वार में भी दोनों गुणस्थानों में इसी प्रकार समझना चाहिये ।

✣ कायिकी क्रिया में अनुपरत कायिकी चौथे गुणस्थान तक और दुष्प्रयुक्त कायिकी क्रिया छठे गुणस्थान तक लगती है । इसके बाद कायिकी क्रिया नहीं लगती । प्रज्ञापना पद २२ में कायिकी क्रिया के अभाव में शेष आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी पारितापनिकी और प्राणातिपातिकी क्रिया भी सातवें आदि गुणस्थान में नहीं लगती । अतएव सातवें से दसवें गुणस्थान में कषाय के सद्भाव में सूक्ष्म रूप से १५ क्रिया लगना संभव है ।

छोड़कर २१ क्रियाएं पायी जाती है । सातवें से दसवें गुणस्थान तक कायिकी आदि ५ एवं आरंभिया को छोड़कर शेष १५ क्रियाएँ आंशिक रूप से पाई जाती है । ग्यारहवें बारहवें और तेरहवें में एक ईरियावहिया क्रिया पाई जाती है । चौदहवें गुणस्थान में एक भी क्रिया नहीं है ।

५ सत्ता द्वार ❁

पहले गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान तक आठों ही कर्मों की सत्ता है । बारहवें गुणस्थान में सात ❖ कर्मों की सत्ता है और तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थान में चार अघाती कर्मों की सत्त रहती है ।

६ बन्ध द्वार ❀

तीसरे गुणस्थान को छोड़कर पहले से सातवें गुणस्थान तक सात तथा आठ कर्मों का बन्ध होता है (जब सात कर्मों का बन्ध होता है तब आयु-कर्म नहीं बँधता) तीसरे आठवें और नौवें गुणस्थान में आयु-कर्म के सिवाय सात कर्मों का बन्ध होता है । दसवें गुणस्थान में मोहनीय और आयु के सिवाय छह कर्मों का बन्ध होता है । ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थान में एक सातावेदनीय का ही बन्ध होता है । चौदहवें गुणस्थान में बन्ध नहीं होता ।

❁ आत्मा के साथ कर्मों का लगा रहना 'सत्ता' है ।

❖ क्योंकि बारहवें गुणस्थान में मोहनीय-कर्म का अभाव हो जाता है ।

❀ आत्मा के साथ कर्मों का क्षीर-नीर के समान एकमेक हो जाना ।

७ उदय द्वार ❁

पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक आठों कर्मों का उदय होता है । ग्यारहवें तथा बारहवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म के सिवाय सात कर्मों का उदय होता है । तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थान में चार अघाती कर्मों का उदय होता है ।

८ उदीरणा द्वार ❀

पहले से ले कर छठे गुणस्थान तक सात-आठ-छह ✪ कर्मों की उदीरणा होती है (सात की उदीरणा हो, तो आयु कर्म की नहीं होती तथा छह की उदीरणा हो तो आयु व वेदनीय को छोड़ना) । सातवें, आठवें और नौवें गुणस्थान में छह कर्मों की उदीरणा (आयु और वेदनीय को छोड़ कर) दसवें गुणस्थान में छह या पाँच कर्मों की उदीरणा (छह की हो, तो पूर्वोक्त दो

❁ आत्मा के साथ बंधे हुए कर्म दलिकों का अपने नियत समय पर शुभाशुभ फलों का अनुभव कराना उदय हैं ।

❀ तपस्या लोच आदि क्रियाओं से, स्थिति पूर्ण होने से पूर्व ही कर्मों को उदय में लाना 'उदीरणा' है ।

✪ भगवती सूत्र शतक ११ उद्देशक १, शतक २५ उद्देशक ६ एवं शतक ३५ से ४० तक से स्पष्ट होता है कि ६ कर्मों की उदीरणा भी होती है। पुलाक पुलाकपने में काल नहीं करता लेकिन आयु की अनुदीरणा बताई है अतः तीसरे गुणस्थान में अमर होने पर भी आयु की अनुदीरणा मानना उचित लगता है । अप्रमत्त अवस्था आने के पूर्व भी आयुष्य व वेदनीय की उदीरणा रुकना उपर्युक्त पाठों से स्पष्ट हो जाने से तीसरे गुणस्थान में भी इनकी अनुदीरणा मानने में बाधा नहीं लगती हैं ।

छोड़ना और पाँच की हो तो मोहनीय भी छोड़ देना) । ग्यारहवें गुणस्थान में पाँच कर्मों की उदीरणा, बारहवें गुणस्थान में पूर्वोक्त पाँच कर्मों की या नाम और गोत्र इन दो कर्मों की उदीरणा होती है या किसी की नहीं होती । चौदहवें गुणस्थान में उदीरणा नहीं होती ।

९ निर्जरा द्वार ❁

पहले गुणस्थान से दसवें गुणस्थान तक आठों कर्मों की निर्जरा होती है । ग्यारहवें तथा बारहवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म के सिवाय सात कर्मों की निर्जरा होती है और तेरहवें तथा चौदहवें गुणस्थान में चार अघाती कर्मों की निर्जरा होती है ।

१० भाव द्वार

भाव पाँच होते हैं - १ औदयिक ☮ भाव २ औपशमिक ✿ भाव ३ क्षायिक ❀ भाव ४ क्षायोपशमिक ✣ भाव और ५ पारिणामिक ❂ भाव ।

❁ फल देकर कर्मों का आत्मा से पृथक् हो जाना 'निर्जरा' है ।

☮ कर्मों के उदय से होने वाला भाव, जैसे - क्रोध आदि ।

✿ कर्मों के उपशम से होने वाला भाव, जैसे - उपशम समकित, उपशम चारित्र ।

❀ कर्मों के क्षय से होने वाला भाव, जैसे - केवलज्ञान ।

✣ कर्मों के क्षयोपशम से होने वाला भाव, जैसे - मतिज्ञान आदि ।

❂ स्वभाव से ही रहने वाला भाव, जैसे - जीवत्व, भव्यत्व, ... ।

पहले, दूसरे और तीसरे गुणस्थान में – औदयिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक – ये तीन भाव होते हैं । चौथे से ग्यारहवें गुणस्थान तक उपशम श्रेणी वाले में पाँचों भाव होते हैं । चौथे से बारहवें गुणस्थान तक क्षपक-श्रेणी वाले में औपशमिक छोड़कर शेष चारों भाव पाये जाते हैं । तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में औदयिक, क्षायिक और पारिणामिक भाव – ये तीन भाव होते हैं तथा सिद्धों में क्षायिक और पारिणामिक – ये दो भाव होते हैं ।

११ कारण द्वार

बन्ध के कारण पाँच होते हैं – १ मिथ्यात्व २ अविरति ३ प्रमाद ४ कषाय और ५ योग ।

पहले, दूसरे ❖ और तीसरे गुणस्थान में पाँचों ही कारण होते हैं । चौथे गुणस्थान में मिथ्यात्व के सिवाय चार कारण होते हैं । पाँचवें और छठे गुणस्थान में मिथ्यात्व तथा अविरति के सिवाय तीन कारण होते हैं । सातवें से दसवें गुणस्थान तक कषाय और योग – ये दो कारण होते हैं और ग्यारहवें, बारहवें तथा तेरहवें गुणस्थान में मात्र शुभ योग ही कारण होता है । चौदहवें गुणस्थान में कोई कारण नहीं है, वहाँ कर्म का बन्ध ही नहीं होता ।

१२ परीषह द्वार

बाईस परीषहों के नाम – १ क्षुधा २ तृषा ३ शीत ४ उष्ण ५ दंशमसक ६ अचेल ७ अरति ८ स्त्री ९ चर्या १० (वे

❖ दूसरा गुणस्थान मिथ्यात्वाभिमुख होने से .हैं



११ शय्या १२ आक्रोश १३ वध १४ याचना १५ अलाभ १६ रोग १७ तृणस्पर्श १८ जल (मैल) १९ सत्कार-पुरस्कार २० प्रज्ञा २१ अज्ञान और २२ दर्शन परीषह ।

चार कर्मों के उदय से बाईस परीषह होते हैं - ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से बीसवाँ और इक्कीसवां - ये दो परीषह होते हैं । वेदनीय कर्म के उदय से ग्यारह (पहला, दूसरा, तीसरा, चौथा, पाँचवां, नौवाँ, ग्यारहवाँ, तेरहवाँ, सोलहवाँ, सत्तरहवाँ और अठारहवाँ) मोहनीय कर्म के उदय से आठ परीषह (दर्शन मोहनीय के उदय से एक बाईसवां 'दर्शन परीषह' होता है और चारित्र-मोहनीय के उदय से सात-छठा, सातवाँ, आठवाँ, दसवाँ, बारहवाँ, चौदहवाँ और उन्नीसवाँ) परीषह होते हैं । अन्तराय कर्म के उदय से एक पन्द्रहवाँ परीषह होता है ।

पहले से तीसरे गुणस्थान तक मार्गस्थ नहीं होने के कारण परीषह नहीं माने जाते हैं । चौथे गुणस्थान में अविरति परिणाम होने के कारण दर्शन परीषह के सिवाय शेष परीषह संभव नहीं हैं ❊ । पांचवें गुणस्थान में श्रमण भूत प्रतिमा आदि की अपेक्षा से बाईसों परीषह हो सकते हैं । छठे व सातवें गुणस्थान में २२ परीषह होते हैं । जिनमें से एक समय में एक जीव अधिक से

❊ तत्त्वार्थ सूत्र के नवमें अध्याय के आठवें सूत्र में बताया है -

"मार्गाऽच्यवन निर्जरार्थ परिसोढव्याः परीषहः ॥८॥

अर्थात् मार्ग से च्युत नहीं होने और कर्मों की निर्जरा के लिए जो सहन करने योग्य है वे परीषह हैं । इसलिये पहले तीन गुणस्थानों में परीषह नहीं मान कर दुःख कहना व चौथे गुणस्थान में अविरति सम्यग्-दृष्टि होने के कारण मात्र दर्शन परीषह मानना उचित लगता है ।

अधिक २० परीषह वेदता दो नहीं वेदता क्योंकि शीत परीषह हो तो उष्ण नहीं होता और उष्ण हो तो शीत नहीं होता तथा चर्या परीषह हो तो निषद्या नहीं होता और निषद्या होतो चर्या नहीं होता। आठवें गुणस्थान में दर्शन परीषह को छोड़ कर २१ परीषह होते हैं जिनमें से एक समय में एक जीव अधिक से अधिक १९ परीषह वेदता है (शीत उष्ण में से एक तथा चर्या निषद्या में से एक) नौवें गुणस्थान में अचेल अरति व निषद्या को छोड़ कर शेष १८ परीषह होते हैं, जिनमें से एक समय में एक जीव अधिक से अधिक १६ परीषह वेदता है (शीत उष्ण में से एक तथा चर्या शय्या में से एक) दसवें, ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म के आठ परीषह छोड़कर शेष चौदह परीषह होते हैं। उनमें से एक समय में एक जीव अधिक से अधिक १२ परीषह वेदता है, दो नहीं वेदता। क्योंकि शीत हो तो उष्ण नहीं, उष्ण हो तो शीत नहीं, चर्या हो तो शय्या नहीं, शय्या हो तो चर्या नहीं। तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में वेदनीय कर्म से होने वाले ग्यारह परीषह उत्पन्न होते हैं, जिनमें से एक साथ अधिक से अधिक नौ परीषह वेदते हैं, पूर्वोक्त रीति से दो नहीं होते।

१३ आत्मा द्वार

आठ आत्माओं के नाम - १ द्रव्य आत्मा २ कषाय आत्मा ३ योग आत्मा ४ उपयोग आत्मा ५ ज्ञान आत्मा ६ दर्शन आत्मा ७ चारित्र आत्मा और ८ वीर्य आत्मा।

पहले और तीसरे गुणस्थान में ज्ञान और चारित्र आत्मा के सिवाय छह आत्माएं पाई जाती है। दूसरे, चौथे और



गुणस्थान में चारित्र आत्मा के सिवाय सात आत्माएं होती है । छठे गुणस्थान से लेकर दसवें गुणस्थान तक आठों आत्माएँ होती है । ग्यारहवें से तेरहवें गुणस्थान तक कषाय आत्मा के सिवाय सात आत्माएँ होती हैं । चौदहवें गुणस्थान में कषाय आत्मा और योग आत्मा के सिवाय छह आत्माएं होती हैं । सिद्ध भगवान् में ज्ञान, दर्शन, द्रव्य और उपयोग – ये चार आत्माएँ होती है ।

१४ जीव भेद द्वार

पहले गुणस्थान में जीव के चौदह ही भेद पाये जाते हैं । दूसरे गुणस्थान में जीव के छह भेद पाये जाते हैं – दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय, इन का अपर्याप्त, संज्ञी पंचेन्द्रिय का पर्याप्त और अपर्याप्त । तीसरे गुणस्थान में जीव का एक ही भेद पाया जाता है – संज्ञी का पर्याप्त, चौथे गुणस्थान में संज्ञी का पर्याप्त और अपर्याप्त – ये दो भेद पाये जाते हैं । पाँचवें से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक जीव का एक ही भेद – संज्ञी का पर्याप्त पाया जाता है ।

१५ गुणस्थान द्वार

प्रत्येक गुणस्थान अपने-अपने गुण से संयुक्त होता है । पहले गुणस्थान से चौथे गुणस्थान तक आठ बोल पाये जाते हैं – [illegible] असंयत २ अप्रत्याख्यानी ३ अविरत ४ असंवृत ५ अपण्डित ६ [illegible] ७ अधर्मी ८ अधर्मव्यवसायी । पाँचवें गुणस्थान में आठ [illegible] पाये जाते हैं – १ संयतासंयत २ प्रत्याख्याना-प्रत्याख्यानी ३ व्रताव्रती ४ संवृतासंवृत ५ बालपण्डित ६ सुप्त-जागृत ७ धर्माधर्मी



८ धर्माधर्मव्यवसायी । छठे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक आठ बोल पाये जाते हैं – १ संयती २ प्रत्याख्यानी ३ विरत ४ संवृत ५ पण्डित ६ जागृत ७ धर्मी ८ धर्मव्यवसायी ।

दूसरी तरह से गुणस्थान द्वार –

गत्यन्तर जाते मार्ग में गुणस्थान तीन – पहला, दूसरा और चौथा ।

अमर गुणस्थान तीन – ३, १२, १३ ।

अप्रतिपाति गुणस्थान तीन – १२, १३, १४ ।

तीर्थंकर नामकर्म के बन्धक गुणस्थान पाँच–४, ५, ६, ७, ८ ।

तीर्थंकर के लिए अस्पृश्य गुणस्थान पाँच–१, २, ३, ५, ११ ।

शाश्वत गुणस्थान छह – १, ४, ५, ६, ७ ✿, १३ ।

अनाहारक ❋ गुणस्थान पाँच – १, २, ४, १३, १४ ।

मोक्ष प्राप्त करने वाला उस भव में कम से कम आठ

✿ पंच संग्रह भाग १ की ५३ वीं गाथा की टीका में सातवें गुणस्थान को शाश्वत बताया है उत्तरपयडीबंधो ग्रंथ के काल द्वार की ९४२ वीं गाथा की टीका में मनःपर्यवज्ञान में आहारकद्विक का बंध शाश्वत बताया है आहारक द्विक का बंध ७ वें गुणस्थान में होता है अतः सातवां गुणस्थान शाश्वत मानना उचित लगता है । आठवें गुणस्थान में आहारक द्विक का बंध होता है, लेकिन श्रेणी शाश्वत नहीं होने से ८ वाँ गुणस्थान शाश्वत नहीं है ।

❋ औदारिक आदि के पुद्गलों को ग्रहण नहीं करने वाले को 'अनाहारक' कहते हैं । पहला, दूसरा और चौथा गुणस्थान विग्रह गति की अपेक्षा से अनाहारक हैं और तेरहवाँ केवली–समुद्घात के तीसरे चौथे और पाँचवें समयों की अपेक्षा से अनाहारक है । चौदहवें गुणस्थान में तो आहार पुद्गलों का ग्रहण होता ही नहीं, अतः वह अनाहारक है ।

गुणस्थान अवश्य प्राप्त करता है - ४, ७, ८, ९, १०, १२, १३, १४ । और संसार अवस्थान काल में कम से कम प्रथम गुणस्थान सहित नौ गुणस्थान प्राप्त करता है ।

१६ योग द्वार ❁

पहले दूसरे और चौथे गुणस्थान में १३ योग (१ आहारक और २ आहारक मिश्र, इन दो को छोड़कर) पाये जाते हैं । तीसरे गुणस्थान में १० योग (१ औदारिक-मिश्र २ वैक्रिय-मिश्र ३ आहारक ४ आहारक मिश्र और ५ कार्मण, इन पाँचों को छोड़कर) पाये जाते हैं । पाँचवें गुणस्थान में १२ योग (१ आहारक २ आहारक मिश्र और ३ कार्मण को छोड़कर) पाये जाते हैं । छठे गुणस्थान में कार्मण के सिवाय चौदह योग पाये जाते हैं । सातवें ✳ से बारहवें गुणस्थान तक चार मनोयोग, चार वचन योग और एक औदारिक, इस प्रकार नौ योग पाये जाते हैं । तेरहवें गुणस्थान में पाँच या सात योग होते हैं - पाँच होवें तो १ सत्य मनोयोग २ व्यवहार मनोयोग ३ सत्य वचन योग ४ व्यवहार वचन योग तथा ५ औदारिक - ये पाँच होते हैं । यदि सात हो, तो पाँच

❁ मन वचन और काया के निमित्त से आत्मा के प्रदेशों में होने वाली चंचलता को 'योग' कहते हैं । इसके पन्द्रह भेद हैं ।

✳ कर्मग्रन्थ भाग २ में सातवें गुणस्थान में आहारक द्विक, वैक्रिय द्विक का उदय नहीं बताया है । पन्नवणा सूत्र के पद २१ वें में अप्रमतावस्था आहारक शरीर नहीं बताया है अतः सातवें गुणस्थान में आहारक व वैक्रिय काययोग नहीं मान कर ९ योग मानना ही उचित लगता है ।



पूर्वोक्त और औदारिक मिश्र तथा कार्मण, इस प्रकार सात होते हैं । चौदहवें गुणस्थान में योग नहीं होता है ❖।

१७ उपयोग द्वार

पहले और तीसरे गुणस्थान में छह उपयोग हो सकते हैं - तीन अज्ञान - कुमति, कुश्रुत, कुअवधि (विभंग) और तीन दर्शन - चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन । दूसरे, चौथे और पाँचवें गुणस्थान में छह उपयोग होते हैं - ३ ज्ञान, ३ दर्शन । छठे से बारहवें तक सात उपयोग होते हैं - पूर्वोक्त छह और एक मनः-पर्यवज्ञान । तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में केवलज्ञान और केवलदर्शन - ये दो ही उपयोग होते हैं ।

१८ लेश्या द्वार

पहले गुणस्थान से छठे गुणस्थान तक छह लेश्याएँ पाई जाती हैं । सातवें गुणस्थान में तेजो, पद्म और शुक्ल - ये तीन लेश्याएं होती है । आठवें से बारहवें तक एक शुक्ल लेश्या ही होती है । तेरहवें गुणस्थान में एक परम शुक्ल लेश्या होती है । चौदहवें गुणस्थान में लेश्या नहीं होती ।

१९ हेतु द्वार

हेतु सत्तावन होते हैं - ५ मिथ्यात्व, २५ कषाय, १५ योग

❖ योग द्वार को संक्षेप में स्मृति में रखने के लिये निम्न पद्धति सरल लगती है; - पहले, दूसरे, चौथे में योग १३, तीसरे में योग १०, पाँचवें में १२, छठे में १४, सातवें से बारहवें तक ९, तेरहवें में ५ या ७ और चौदहवाँ अयोगी।



और १२ अव्रत (६ काय ❋ ५ इन्द्रिय १ मन) ।

पहले गुणस्थान में आहारक और आहारक मिश्र को छोड़कर शेष पचपन हेतु पाये जाते हैं । दूसरे गुणस्थान में पाँच मिथ्यात्व को छोड़कर पचास हेतु पाये जाते हैं । तीसरे गुणस्थान में पूर्वोक्त पचास में से चार अनन्तानुबन्धी, औदारिक-मिश्र, वैक्रिय मिश्र और कार्मण - इन सातों के सिवाय तियालीस ४३ हेतु पाये जाते हैं । चौथे गुणस्थान में पूर्वोक्त तियालीस के सिवाय औदारिक मिश्र, वैक्रिय मिश्र और कार्मण - ये तीन विशेष होकर छियालीस हेतु पाये जाते हैं । पाँचवें गुणस्थान में, छियालीस में से अप्रत्याख्यान की चौकड़ी, त्रस की अविरति और कार्मण - ये छह घटा कर चालीस हेतु पाये जाते हैं । छठे गुणस्थान में सत्ताईस हेतु पाये जाते हैं - १४ योग और १३ कषाय ❀ । सातवें आठवें गुणस्थान में, औदारिक-मिश्र, वैक्रिय, वैक्रिय मिश्र, आहारक और आहारक-मिश्र - इन पाँच को छोड़कर बाईस हेतु पाये जाते हैं । नौवे गुणस्थान में हास्य आदि छह के सिवाय सोलह हेतु पाये जाते हैं दसवें गुणस्थान में ९ योग और संज्वलन का लोभ, ये दस हेतु पाये जाते हैं । ग्यारहवें तथा बारहवें गुणस्थान में, चार मन के, चार वचन के और एक औदारिक - ये नौ हेतु पाये जाते हैं तेरहवें गुणस्थान में पाँच तथा सात हेतु पाये जाते हैं - १ सत्य मन योग, २ व्यवहार मन योग, ३ सत्य भाषा ४ व्यवहार भाषा, ५ औदारिक, ६ औदारिक-मिश्र और ७ कार्मण (अगर ५ हेतु पावें

❋ छह काय की यतना न करना और पाँच इन्द्रिय तथा मन को वश रखना ।

❀ संज्वलन की चौकड़ी और नौ नो-कषाय ।

तो औदारिक मिश्र व कार्मण छोड़ना) । चौदहवें गुणस्थान में कोई भी हेतु नहीं होता ❊ ।

२० मार्गणा द्वार ❁

पहले गुणस्थान में आगति मार्गणा पांच (दूसरे, तीसरे, चौथे, पांचवें और छठे गुणस्थान से आ सकते हैं) गति मार्गणा चार (तीसरे, चौथे, पांचवें, सातवें गुणस्थान में जा सकते हैं)

दूसरे गुणस्थान की आगति मार्गणा तीन (चौथा, पांचवां, छठा गुणस्थान) गति मार्गणा एक (पहला गुणस्थान) ।

तीसरे गुणस्थान की आगति मार्गणा चार (पहला, चौथा, पांचवां, छठा गुणस्थान) गति मार्गणा चार (गिरे तो पहला, चढ़े तो चौथा, पांचवा, छठा गुणस्थान)

चौथे गुणस्थान की आगति मार्गणा नौ (पहले से ग्यारहवें गुणस्थान तक दूसरे व चौथे को छोड़ कर) गति मार्गणा पांच (चढे तो पांचवां, सातवां, गिरे तो तीसरा, दूसरा, पहला गुणस्थान)

पांचवें गुणस्थान की आगति मार्गणा चार (पहला, तीसरा, चौथा, छठा) गति मार्गणा पांच (चढ़े तो सातवां, गिरे तो चौथा, तीसरा, दूसरा, पहला गुणस्थान)

❊ हेतु द्वार को संक्षेप में स्मृति में रखने के लिये निम्न पद्धति सरल लगती है; - ५५, ५०, ४३, ४६, ४०, २७, २२, २२, १६, १०, ९, ९, ५ या ७, तथा कोई हेतु नहीं ।

❁ यहां मार्गणा का तात्पर्य आने व जाने के मार्ग से है । जैसे - पहले गुणस्थान में आगति मार्गणा पांच यानी पहले गुणस्थान में जीव पांच गुणस्थानों (२, ३, ४, ५, ६) से आ सकता है और गति मार्गणा ४ यानी पहले . जीव चार गुणस्थानों (३, ४, ५, ७) में जा सकता है ।



छठे गुणस्थान की आगति मार्गणा एक–सातवाँ गुणस्थान गति मार्गणा ६ (चढे तो सातवां, गिरे तो पांचवां, चौथा, तीसरा दूसरा, पहला गुणस्थान)

सातवें गुणस्थान की आगति मार्गणा छह (पहला, तीसरा चौथा, पांचवां, छठा, आठवां गुणस्थान) गति मार्गणा तीन (चढे तो आठवां गिरे तो छठा, काल करे तो चौथा गुणस्थान)

आठवें गुणस्थान में आगति मार्गणा दो (सातवां, नवव गुणस्थान) गति मार्गणा तीन (चढे तो नववां, गिरे तो सातवां काल करे तो चौथा गुणस्थान)

नववें गुणस्थान में आगति मार्गणा दो (आठवां, दसव गुणस्थान) गति मार्गणा तीन (चढे तो दसवां, गिरे तो आठवां काल करे तो चौथा गुणस्थान)

दसवें गुणस्थान की आगति मार्गणा दो (नववां, ग्यारहव गुणस्थान) गति मार्गणा तीन (चढे तो ग्यारहवां, गिरे तो नववां, काल करे तो चौथा गुणस्थान)

ग्यारहवें गुणस्थान की आगति मार्गणा एक – दसवां गुणस्था गति मार्गणा दो – गिरे तो दसवां, काल करे तो चौथा गुणस्थान ।

बारहवें गुणस्थान की आगति मार्गणा एक – दसवां गुणस्था गति मार्गणा एक – तेरहवां गुणस्थान।

तेरहवें गुणस्थान की आगति मार्गणा एक – बारहवां । गति मार्गणा एक – चौदहवां गुणस्थान।

चौदहवें गुणस्थान की आगति मार्गणा एक – तेरहवां गुणस्थान। गति मार्गणा एक – मोक्ष ।



२१ ध्यान द्वार ✿

पहले, दूसरे और तीसरे गुणस्थान में आर्त्तध्यान तथा रौद्रध्यान पाये जाते हैं । चौथे और पाँचवें में आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान और धर्मध्यान पाये जाते हैं । छठे में आर्त्तध्यान और धर्मध्यान होता है । सातवें में केवल धर्मध्यान ही है । आठवें से चौदहवें तक शुक्ल ध्यान पाया जाता है ।

२२ दण्डक द्वार

पहले गुणस्थान में चौबीस दण्डक, दूसरे में चौबीस में से पाँच स्थावर के छोड़कर उन्नीस, तीसरे और चौथे में (उन्नीस में से तीन विकलेन्द्रिय के छोड़कर) सोलह, पाँचवें में संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य - ये दो, छठे से चौदहवें गुणस्थान तक मनुष्य का एक दण्डक पाया जाता है ।

२३ जीवयोनि द्वार

पहले गुणस्थान में चौरासी लाख ☆ जीवयोनि । दूसरे गुणस्थान में (एकेन्द्रिय की ५२ लाख छोड़कर) बत्तीस लाख ।

✿ चित्त की एकाग्रता को 'ध्यान' कहते हैं ।

☆ चौरासी लाख जीवयोनि इस प्रकार हैं - ७ लाख पृथ्वीकाय, ७ लाख अप्काय, ७ लाख तेऊकाय, ७ लाख वायुकाय, १० लाख प्रत्येक वनस्पतिकाय, १४ लाख साधारण वनस्पतिकाय, २ लाख द्वीन्द्रिय, २ लाख त्रीन्द्रिय, २ लाख चतुरिन्द्रिय, १४ लाख मनुष्य, ४ लाख तिर्यंच पंचेन्द्रिय, ४ लाख नारकी और ४ लाख देवों की ।

तीसरे चौथे गुणस्थान में (तीन विकलेन्द्रिय की छह लाख घटाकर) छब्बीस लाख, पाँचवें गुणस्थान में (चौदह लाख मनुष्यों की और चार लाख तिर्यंचों की - इस प्रकार) अठारह लाख, छठे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक मनुष्य की चौदह लाख जीवयोनियाँ पायी जाती है ।

२४ निमित्त द्वार

पहले से चौथे तक चार गुणस्थान, दर्शनमोहनीय के निमित्त से होते हैं । पाँचवें से बारहवें तक आठ गुणस्थान चारित्र मोहनीय के निमित्त से होते हैं और तेरहवाँ तथा चौदहवाँ गुणस्थान योग के निमित्त से होता है ।

२५ चारित्र द्वार

पहले से चौथे गुणस्थान तक चारित्र नहीं होता, पाँचवें गुणस्थान में देश चारित्र, छठे और सातवें गुणस्थान में तीन चारित्र होते हैं - १ सामायिक ☮ २ छेदोपस्थापनीय ❂ और ३ परिहारविशुद्धि ❖ । आठवें, नौवें गुणस्थान में दो चारित्र होते हैं - १ सामायिक २ छेदोपस्थापनीय । दसवें गुणस्थान में १ सूक्ष्म

☮ जिस चारित्र में समता-भाव की प्राप्ति हो, उसे 'सामायिक चारित्र' कहते हैं ।

❂ पहले ग्रहण किये हुए संयम को छेद कर फिर संयम में आना-अर्थात् पहले जितने दिन संयम पालन किया हो, उसे न गिन कर दूसरी बार संयम लेने के समय से दीक्षाकाल गिनना और बड़े छोटे का व्यवहार करना, इसे 'छेदोपस्थापनीय चारित्र' कहते हैं ।

❖ जिसमें परिहार-विशुद्धि नाम की तपस्या की जाती है, उसे परिहार-विशुद्धि चारित्र कहते हैं ।



सम्पराय ※ चारित्र होता है । ग्यारहवें से चौदहवें गुणस्थान तक यथाख्यात ✱ चारित्र होता है ।

२६ आकर्ष द्वार ✿

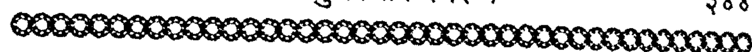
पहले गुणस्थान का तीसरा भंग (सादि सपर्यवसित), तीसरा, चौथा और पांचवां गुणस्थान एक भव की अपेक्षा जघन्य एक बार उत्कृष्ट पृथक्त्व हजार बार प्राप्त हो सकता है । अनेक भवों की अपेक्षा जघन्य दो बार उत्कृष्ट असंख्यात बार प्राप्त हो सकता है । दूसरा गुणस्थथान एक भव की अपेक्षा जघन्य एक बार उत्कृष्ट दो बार और अनेक भवों की अपेक्षा जघन्य दो बार उत्कृष्ट पांच बार प्राप्त हो सकता है । छठा और सातवां गुणस्थान 卐 मिला कर एक भव की अपेक्षा जघन्य एक बार उत्कृष्ट पृथक्त्व १०० बार, अनेक भवों की अपेक्षा जघन्य दो बार उत्कृष्ट पृथक्त्व १००० बार । आठवां, नववां, दसवां गुणस्थान एक भव में जघन्य १ बार उत्कृष्ट ४ बार, अनेक भवों की अपेक्षा जघन्य दो बार उत्कृष्ट नौ बार । ग्यारहवां गुणस्थान एक भव में जघन्य १ बार उत्कृष्ट २

※ जिस चारित्र में कषाय का सूक्ष्म उदय रहता है, उसे 'सूक्ष्मसंपराय चारित्र' कहते हैं । इसमें सूक्ष्म लोभ का ही उदय होता है ।

✱ जिस चारित्र में लेश मात्र भी कषाय नहीं रहती, उसे 'यथाख्यात चारित्र' कहते हैं ।

✿ जीव एक भव की अपेक्षा और अनेक भवों की अपेक्षा प्रत्येक गुणस्थान को जघन्य और उत्कृष्ट कितनी बार फरस सकता है, उस फरसने की संख्या विशेष को आकर्ष कहते हैं ।

卐 वैसे तो छठे सातवें गुणस्थान में जीव एक भव में करोड़ों बार आ जा सकता है लेकिन इन गुणस्थानों को छोड़ कर वापिस इन्हीं गुणस्थानों में पृथक्त्व १०० बार से ज्यादा जीव नहीं आ सकता है ।



बार अनेक भवों में जघन्य दो उत्कृष्ट चार बार, बारहवां तेरहवां चौदहवां गुणस्थान एक भव की अपेक्षा जघन्य उत्कृष्ट १ बार ।

२७ समकित द्वार

क्षायिक सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक होता है । उपशम सम्यक्त्व चौथे गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान तक होता है । क्षायोपशमिक (वेदक) सम्यक्त्व चौथे से सातवें गुणस्थान तक होता है । सास्वादन सम्यक्त्व दूसरे गुणस्थान में होता है । मिथ्यात्व और मिश्र गुणस्थान में सम्यक्त्व नहीं है ।

२८ अन्तर द्वार

पहले गुणस्थान के तीन भंग हैं - १ अनादि अपर्यवसित (सदा से मिथ्यादृष्टि हैं और सदा रहेंगे, अभव्य जीव) २ अनादि-सपर्यवसित (जिनके मिथ्यात्व की आदि नहीं, किंतु अन्त है, भव्य जीव) ३ सादि-सपर्यवसित (जिनके मिथ्यात्व की आदि भी है और अन्त भी है, प्रतिपतित सम्यग्दृष्टि) ।

इन तीन भंगों में से तीसरे भंग का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट छासठ सागर झाझेरा है । दूसरे से लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक का अन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन (कुछ कम) अर्द्ध पुद्गल परावर्तन है । बारहवें तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान का अन्तर नहीं है ❀ ।

❀ तात्पर्य - किसी गुणस्थान से एक बार च्युत हो कर दूसरी बार फिर उसी गुणस्थान में आने तक जितना काल बीच में व्यतीत होता है, उसे 'अन्तर' कहते हैं । पहले मिथ्यात्व गुणस्थान के पहले दो भंगों में अन्तर नहीं होता । क्योंकि प्रथम भंग वाले का तो मिथ्यात्व छुटता ही नहीं है और दूसरे भंग वाले का कब मिथ्यात्व छूटेगा यह निश्चय नहीं है। दूसरे गुणस्थान से



२९ अल्पबहुत्व द्वार

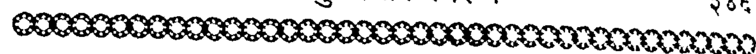
ग्यारहवें गुणस्थान वाले जीव सब से थोड़े हैं और वे ५४ पाये जाते हैं ✱। ग्यारहवें गुणस्थान की अपेक्षा बारहवें और चौदहवें गुणस्थान वाले संख्यात गुण अधिक हैं। क्षपक-श्रेणी वाले एक सौ आठ १०८ पाये जाते हैं। इनसे उपशम-श्रेणी के आठवें नौवें और दसवें गुणस्थान वाले संख्यात गुण हैं। ये एक समय में पृथक्त्व ⁘ सौ पाये जाते हैं। उनकी अपेक्षा तेरहवें गुणस्थान वाले संख्यात गुण हैं और ये एक समय में पृथक्त्व करोड़ पाये जाते हैं। उनकी अपेक्षा सातवें गुणस्थान वाले संख्यात गुण हैं और ये एक समय में पृथक्त्व सौ करोड़ ✿ पाये जाते हैं। उनकी अपेक्षा छठे गुणस्थान वाले संख्यात गुण हैं और ये

लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक के जीव, अपने अपने गुणस्थान से च्युत होकर कम से कम अन्तर्मुहूर्त्त में और अधिक से अधिक से अधिक कुछ कम अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल में उन-उन गुणस्थानों में आ सकते हैं, इसी कारण इनमें इतने समय का अन्तर बतलाया गया है। बारहवें, तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान वाले जीव इन गुणस्थान से च्युत होकर फिर इन गुणस्थानों में नहीं आते, एक बार चढ़ कर सिद्ध हो जाते हैं। अतएव इनका कुछ भी अन्तर नहीं है।

✱ यह ५४ की संख्या प्रतिपद्यमान (वर्तमान) एक समय में श्रेणी प्रारंभ करने वालों की अपेक्षा से हैं। पूर्वप्रतिपन्न हो, तो वे इनसे विशेष होंगे। यही बात १२ वें और १४ वें गुणस्थान के विषय में भी है - डोशी।

⁘ पृथक्त्व का अर्थ २ से ९ तक माना जाता है, परन्तु 'अनेक' अर्थ उपयुक्त है। कोई-कोई इसे 'प्रत्येक' भी कहते हैं, परन्तु प्रत्यक का अर्थ 'हर एक' हैं। इस कारण 'पृथक्त्व' ही बोलना चाहिए।

✿ बीकानेर वाली प्रति पृ. ३९ में सातवें गुणस्थान वालों को 'पृथक्त्व हजार' बताये, यह ठीक नहीं है। यह संख्या प्रतिपद्यमान आसरी तो संभव है। पूर्व प्रतिपन्न आसरी तो पृथक्त्व सौ करोड़ पाये जाते हैं।



एक समय में पृथक्त्व हजार करोड़ पाये जाते हैं । उनकी अपेक्षा पाँचवें गुणस्थान वाले असंख्यात गुण हैं ❖ । इनकी अपेक्षा दूसरे गुणस्थान वाले असंख्यात गुण ※ हैं । दूसरे गुणस्थान वालों की अपेक्षा तीसरे गुणस्थान वाले जीव असंख्यात गुण ☐ हैं । तीसरे गुणस्थान वालों की अपेक्षा चौथे गुणस्थान वाले जीव असंख्यात गुण ◆ हैं । चौथे गुणस्थान वालों से ❊ पहले गुणस्थान वाले जीव अनन्तगुण ▲ हैं ।

।। गुणस्थान स्वरूप समाप्त ।।

❖ क्योंकि असंख्यात गर्भज तिर्यंच भी इस पाँचवें गुणस्थान में हैं ।

※ दूसरे गुणस्थान वाले पाँचवें गुणस्थान से असंख्यात इस कारण है कि पाँचवाँ गुणस्थान केवल मनुष्य और तिर्यंचों को होता है, किन्तु दूसरा गुणस्थान तो चारों गति के जीवों को हो सकता है । इसके सिवाय दूसरा गुणस्थान विकलेन्द्रियों को भी होता है, परन्तु पाँचवाँ नहीं हो सकता ।

☐ यद्यपि दूसरा और तीसरा गुणस्थान चारों गतियों में पाया जाता है, परन्तु दूसरे की अपेक्षा तीसरे की स्थिति संख्यात गुणी है तथा दूसरा गुणस्थान तो मात्र उपशम समकित से गिरते हुए ही आ सकता है किन्तु मिश्र गुणस्थान मिथ्यात्व से चढते हुए अथवा क्षयोपशम से गिरते हुए चौथे पांचवें छठे किसी भी गुणस्थान से आ सकता है । इस कारण तीसरे गुणस्थान वाले जीव दूसरे से असंख्यात गुण है ।

◆ तीसरे गुणस्थान की अपेक्षा चौथे की स्थिति बहुत अधिक है और वह भी चारों गति में पाया जाता है । अतः चौथे गुणस्थान वाले जीव, उनकी क्षा अधिक है ।

❊ यहां एक बोल और भी कहते हैं - चौथे गुणस्थान से सिद्ध अनन्त गुण हैं । फिर सिद्धों से पहले गुणस्थान वाले अनन्त गुण हैं - डोशी ।

▼ साधारण वनस्पतिकाय के जीव, सभी मिथ्यादृष्टि हैं, अतएव पहले गुणस्थान वाले, चौथे गुणस्थान वालों से अनन्त गुण हैं ।

हमारी भावना

प्रथम गुणस्थानी मिथ्यात्वी जीव, सम्यक्त्वी बने। चतुर्थ गुणस्थानी सम्यक्त्वी जीव, सर्वविरत अथवा देशविरत बने। देशविरत श्रावक सर्वविरत श्रमण बने। प्रमत्तसंयत, अप्रमत्त निर्ग्रंथ बने। अप्रमत्त निर्ग्रंथ, अकषायी वीतराग बने। निर्ग्रंथ, स्नातक-सर्वज्ञ सर्वदर्शी बनकर जीवों का उद्धार करें। सयोगी स्तानक, अयोगी बन कर, शैलेशीकरण करके सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होवें।

मेरी गुणस्थान वृद्धि हो। मैं मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा अशुभ योग का त्याग करूँ, निर्ग्रंथ बन कर स्नातक पद प्राप्त करूँ। मेरी काषायिक परिणति नष्ट हो जाय। मेरे समस्त आवरण टूट कर क्षय हो जाय।

समस्त जीव, अप्रशस्त परिणति एवं कृष्णपाक्षिकपन छोड़कर, शुक्लपक्षी बने, परित्त-संसारी एवं चरम शरीरी होकर परमात्म-दशा को प्राप्त होवें।

गति आगति

जीवों की आगति और गति का वर्णन किया जाता है ।

आगति – जीव जिस गति से आ कर उत्पन्न होता है ।

गति – मरने के बाद जिस गति में जा कर उत्पन्न होता है

अपेक्षा भेद से जीव के एक, दो, तीन, चार आदि अनेक भेद होते हैं । किसी अपेक्षा से ५६३ भेद भी हैं । वे इस प्रकार हैं – नारकियों के १४, तिर्यंच के ४८, मनुष्यों के ३०३ और देवों के १९८ ।

नारकियों के १४ भेद

१ घम्मा २ वंशा ३ सीला ४ अंजना ५ अरिष्टा ६ मघा ७ माघवती । इन सात नरकों के नारकी पर्याप्त भी होते हैं और अपर्याप्त भी । अतः ७ पर्याप्त और ७ अपर्याप्त के चौदह भेद हैं ।

तिर्यंचों के ४८ भेद

१. पृथ्वीकाय के चार भेद – सूक्ष्म, बादर । इनके अपर्याप्त ।

२. अप्काय के चार भेद – सूक्ष्म, बादर । इनके अपर्याप्त पर्याप्त ।

३. तेजस्काय के चार भेद – सूक्ष्म, बादर। इनके अपर्याप्त पर्याप्त ।



४. वायुकाय के चार भेद - सूक्ष्म, बादर । इनके अपर्याप्त पर्याप्त ।

५. वनस्पतिकाय के छह भेद - सूक्ष्म, साधारण और प्रत्येक । इन के अपर्याप्त और पर्याप्त । यों एकेन्द्रियों के २२ भेद हुए ।

तीन विकलेन्द्रिय के छह भेद - १ द्वीन्द्रिय २ त्रीन्द्रिय ३ चतुरिन्द्रिय, इन तीन के अपर्याप्त और पर्याप्त ।

पंचेन्द्रिय के पाँच भेद - १ जलचर २ स्थलचर ३ खेचर ४ उरपरिसर्प और ५ भुजपरिसर्प । इनके संज्ञी, असंज्ञी के भेद से दस भेद हैं और इनके अपर्याप्त तथा पर्याप्त के भेद से बीस भेद होते हैं । इस प्रकार सब मिला कर तिर्यंचों के ४८ भेद हैं ।

मनुष्यों के ३०३ भेद

जहां असि, मसि, कृषि वाणिज्य, शिल्प-कला की प्रवृत्ति होती है, उसे 'कर्म भूमि' कहते हैं और जहाँ असि, मसि आदि की प्रवृत्ति नहीं होती और दस प्रकार के वृक्षों से ही निर्वाह हो जाता है, उसे 'अकर्म-भूमि' कहते हैं । कर्मभूमि के १५ भेद * हैं और भोग भूमि के ३० भेद ❖ हैं । दोनों को मिला कर उनमें

* कर्मभूमि १५ इस प्रकार की हैं-५भरत, ५ ऐरावत, ५ महाविदेह । एक भरत जम्बूद्वीप का, दो धातकीखण्ड के और दो पुष्करार्ध के, ये ५ भरत क्षेत्र हैं । इसी प्रकार ऐरावत और महाविदेह भी समझने चाहिए ।

❖ भोगभूमि ३० पूर्वोक्त प्रकार से ५ देवकुरु, ५ उत्तरकुरु, ५ हरिवास, ५ रम्यक्वर्ष, ५ हैमवत, ५ हैरण्यवत । इस प्रकार ३० अकर्मभूमि हैं ।

रहने वाले मनुष्यों के ४५ भेद हैं ।५६ अन्तरद्वीपों * में रहने वाले अकर्मभूमिज मनुष्यों के ५६ भेद भी इनमें जोड़ने से १०१ भेद संज्ञी मनुष्य के होते हैं । पर्याप्त, अपर्याप्त के भेद से इनके २०२ भेद हो जाते हैं । इन १०१ क्षेत्रों में चौदह अशुचि स्थानों में उत्पन्न होने वाले सम्मूर्च्छिम असंज्ञी अपर्याप्त मनुष्यों के १०१ भेद

* लवण समुद्र के भीतर होने से इनको अन्तरद्वीप कहते हैं । उनमें रहने वाले मनुष्यों को अन्तरद्वीपिक कहते हैं । जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र और हैमवत क्षेत्र की मर्यादा करने वाला चुल्लहिमवान् पर्वत है । यह पर्वत पूर्व और पश्चिम में लवण समुद्र को स्पर्श करता है । उस पर्वत के पूर्व और पश्चिम के चरमान्त से चारों विदिशाओं (ईशान, आग्नेय, नैऋत्य और वायव्य) में लवण समुद्र में तीन सौ-तीन सौ योजन जाने पर प्रत्येक विदिशा में एकोरुक आदि एक एक द्वीप आता है । वे द्वीप गोल हैं । उनकी लम्बाई चौड़ाई तीन सौ-तीन सौ योजन की है । परिधि प्रत्येक की ९४९ योजन से कुछ कम है । इन द्वीपों से चार सौ-चार सौ योजन लवण समुद्र में जाने पर क्रमशः पांचवाँ, छठा, सातवाँ और आठवाँ द्वीप आते हैं । इनकी लम्बाई चौड़ाई चार सौ-चार सौ योजन की है । ये सभी गोल हैं । इनकी प्रत्येक की परिधि १२६५ योजन से कुछ कम हैं । इसी प्रकार इनसे आगे क्रमशः पाँच सौ, छह सौ, सात सौ, आठ सौ, नव सौ योजन जाने पर क्रमशः चार चार द्वीप आते जाते हैं । इनकी लम्बाई चौड़ाई पाँच सौ से लेकर नव सौ योजन तक क्रमशः जाननी चाहिये । ये सभी गोल हैं । तिगुनी से कुछ अधिक परिधि है। इस प्रकार चुल्लहिमवान् पर्वत की चारों विदिशाओं में अट्ठाईस अन्तर द्वीप हैं ।

जिस प्रकार चुल्लहिमवान् पर्वत की चारों विदिशाओं में अट्ठाईस अन्तरद्वीप कहे गये हैं उसी प्रकार शिखरी पर्वत की चारों विदिशाओं में भी अट्ठाईस अन्तरद्वीप हैं । जिनका वर्णन भगवती सूत्र के दसवें शतक के सातवें उद्देशक से लेकर चौंतीसवें उद्देशे तक २८ उद्देशकों में किया गया है । उनके नाम आदि सब समान हैं ।

जीवाजीवाभिगम और पण्णवणा आदि सूत्रों की टीका में चुल्लहिमवान्



जोड़ने से ३०३ भेद होते हैं । ये सम्मूर्च्छिम मनुष्य अपर्याप्ता ही काल कर जाते हैं इसी कारण इनका पर्याप्ता का भेद नहीं होता है।

देवों के १९८ भेद

१० भवनवासी, १५ परमाधामी, १६ व्यन्तर, १० त्रिजृंभक ⁘ १० ज्योतिषी ✱ १२ वैमानिक, ३ किल्विषी, ९ लोकांतिक

और शिखरी पर्वत की चारों विदिशाओं में चार चार दाढाएं बतलाई गई हैं उन दाढाओं के ऊपर अन्तर द्वीपों का होना बतलाया गया है । किन्तु यह बात सूत्र के मूल पाठ से मिलती नहीं है ।

छप्पन अन्तरद्वीपों के नाम -

	ईशाण कोण	आग्नेय कोण	नैऋत्य कोण	वायव्यकोण
१.	एकोरुक	आभासिक	वैषाणिक	नाङ्गोलिक
२.	हयकर्ण	गजकर्ण	गोकर्ण	शष्कुलीकर्ण
३.	आदर्शमुख	मेण्ढमुख	अयोमुख	गोमुख
४.	अश्वमुख	हस्तिमुख	सिंहमुख	व्याघ्रमुख
५.	अश्वकर्ण	हरिकर्ण	अकर्ण	कर्णप्रावरण
६.	उल्कामुख	मेघमुख	विद्युन्मुख	विद्युद्दंत
७.	घनदन्त	लष्टदन्त	गूढदन्त	शुद्धदन्त

चुल्लहिमवान् पर्वत की तरह ही शिखरी पर्वत की चारों विदिशाओं में उपरोक्त नाम वाले सात-सात अन्तर द्वीप हैं । इस प्रकार दोनों पर्वतों की चारों विदिशाओं में छप्पन अन्तरद्वीप हैं । इन अंतरद्वीपों में अंतरद्वीप के नाम वाले ही युगलिक मनुष्य रहते हैं ।

⁘ १ अन्नजृंभक २ पानजृंभक ३ वस्त्रजृंभक ४ लयणजृंभक ५ शयनजृंभक ६ पुष्पजृंभक ७ फलजृंभक ८ पुष्पफलजृंभक ९ विद्याजृंभक और १० अव्यक्तजृंभक । ये दस जृंभक हैं ।

✱ चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा, ये पाँच ज्योतिषी अढाई द्वीप में चर हैं और उनके बाहर स्थिर हैं । अतः चर-स्थिर के भेद से इन के दस भेद होते हैं ।


९ नवग्रैवेयक के देव, ५ अनुत्तर विमान के देव । ये ९९ प्रकार के देव पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से १९८ प्रकार के होते हैं ।

जीवों के ये सभी भेद मिलाकर ५६३ होते हैं । इन ५६३ भेदों की गति-आगति का यहाँ वर्णन किया जाता है ।

१ पहली नारकी में आगति २५ की हैं । यथा-१५ कर्मभूमिज मनुष्य, ५ संज्ञी तिर्यंच और ५ असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पर्याप्त । इन २५ स्थानों से आ कर जीव, पहली नरक में उत्पन्न होते हैं । **गति ४० की**-१५ कर्मभूमिज मनुष्य और ५ संज्ञी तिर्यंच । इन २० के पर्याप्त और अपर्याप्त ।

२ दूसरी नारकी में आगति २० की - १५ कर्मभूमिज मनुष्य और ५ संज्ञी तिर्यंच । **गति ४० की**-पहली नारकी के समान ।

३ तीसरी नारकी में आगति १९ की - दूसरी नारकी के २० भेदों में से भुजपरिसर्प को छोड़ कर । **गति ४० की**-पहली नारकी के समान ।

४ चौथी नारकी में आगति १८ की । तीसरी नारकी के १९ भेदों में से 'खेचर' को छोड़ कर । **गति ४० की**-पहली नारकी के समान ।

५ पाँचवीं नारकी में आगति १७ भेद से - चौथी नारकी के १८ भेदों में से स्थलचर को छोड़ कर । **गति ४० की** - [illegible]ी नारकी के समान ।

६ छठी नारकी में आगति १६ भेद से - पांचवीं नारकी के १७ भेदों में से उरपरिसर्प को छोड़ कर । **गति ४० की** - पहली नारकी के समान ।



७ सातवीं नारकी में आगति १६ भेद से – १५ कर्मभूमिज मनुष्य ✱ और १ जलचर के पर्याप्त । **गति १० भेद में**–५ संज्ञी तिर्यंच पर्याप्त और ५ अपर्याप्त ।

८ दस भवनपति पन्द्रह परमाधामी १६ वाणव्यंतर व दस जृंभक, इन ५१ प्रकार के देवों में आगति १११ भेद से । १०१ संज्ञी मनुष्य, ५ संज्ञी तिर्यंच और ५ असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के पर्याप्त । **गति ४६ भेद में**–१५ कर्मभूमिज, ५ संज्ञी तिर्यंच, १ बादर पृथ्वीकाय, १ बादर अप्काय और १ बादर वनस्पतिकाय । इन २३ के पर्याप्त और अपर्याप्त–कुल ४६ ।

९ दस ज्योतिषी व पहले देवलोक, इन ११ प्रकार के देवों में आगति ५० भेद से–१५ कर्मभूमिज मनुष्य, ३० अकर्मभूमिज और ५ संज्ञी तिर्यंच के पर्याप्त । **गति ४६ भेद में**–भवनपति के समान ।

१० दूसरे देवलोक में आगति ४० भेद से–३० अकर्मभूमिज में से ५ हैमवत और ५ हैरण्यवत के १० भेद छोड़ कर २० तथा १५ कर्मभूमिज मनुष्य और ५ संज्ञी तिर्यंच के पर्याप्त । **गति ४६ भेद में**–भवनपति के समान ।

११ पहले किल्विषी में आगति ३० से–१५ कर्मभूमिज मनुष्य, ५ संज्ञी तिर्यंच, ५ देवकुरु और ५ उत्तरकुरु के पर्याप्त । **गति ४६ में**–भवनपति के समान ।

१२ तीसरे देवलोक से आठवें देवलोक तक के छह, नौ

✱ यहां सामान्य रूप से कर्मभूमिज मनुष्य गिनाये हैं, परन्तु स्त्री व स्त्री नपुंसक सातवीं नरक में नहीं जा सकते ।

लोकांतिक और दूसरे व तीसरे किल्विषी, इन सत्तरह प्रकार के देवों में २० भेद से आगति-१५ कर्मभूमिज मनुष्य और ५ संज्ञी तिर्यंच के पर्याप्त । गति ४० भेद में-१५कर्मभूमि के मनुष्य और ५ संज्ञी तिर्यंच के पर्याप्त और अपर्याप्त ।

१३ नौवें से बारहवें देवलोक, नौ ग्रैवेयक और पांच अनुत्तर विमान । इन अठारह जाति के देवों में आगति १५ भेद से-१५ कर्मभूमि के पर्याप्ता मनुष्य की । गति ३० भेद में-१५ कर्मभूमि के पर्याप्त और अपर्याप्त मनुष्य ।

१४ पृथ्वी, जल और वनस्पति में आगति २४३ भेद से ✪ - १०१ सम्मूर्च्छिम अपर्याप्त मनुष्य, ३० पन्द्रह कर्मभूमि के पर्याप्त अपर्याप्त मनुष्य, ४८ तिर्यंच ★, ६४ देव (२५ भवनपति, २६ वाणव्यन्तर, १० ज्योतिषी, पहला व दूसरा देवलोक के और पहला किल्विषी के पर्याप्त) इस प्रकार २४३ । गति १७९भेदों में-१०१ सम्मूर्च्छिम मनुष्य के अपर्याप्त, १५ कर्मभूमि के पर्याप्त और १५ अपर्याप्त तथा ४८ तिर्यंच ।

✪ २४३ की आगति बादर पृथ्वी, जल व प्रत्येक वनस्पति की अपेक्षा से है, क्योंकि ६४ जाति के देव बादर पृथ्वी, पानी तथा प्रत्येक वनस्पति में ही उत्पन्न होते हैं । सूक्ष्म पृथ्वी, जल, वनस्पति और साधारण वनस्पति की आगति १७९ की ही है ।

★ गिनती की सुविधा के लिए १७९ बोल की 'लड़ी' बना लेते हैं । इसमें सम्मूर्च्छिम मनुष्य के १०१, कर्म भूमिज मनुष्य के पर्याप्त और अपर्याप्त ३० और तिर्यंच के ४८ ये १७९ हुए । मनुष्य की आगति में इनमें से तेउकाय वायुकाय के ८ भेद निकाल कर १७१ की लड़ी का लेते हैं - डोशी ।



१५ तेजस्काय और वायुकाय में आगति-१७९ भेद से, ऊपर लिखे अनुसार । **गति** ४८ भेद के तिर्यंचों में ।

१६ तीन विकलेन्द्रिय में आगति-१७९ भेद से और **गति १७९ भेद में**-पूर्ववत् ।

१७ असंज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय में आगति-१७९ भेदों से पूर्ववत्। **गति ३९५ भेदों में**-५६ अन्तरद्वीप के मनुष्य, २५ भवनपति के और २६ व्यन्तर के-(यों कुल ५१ जाति के देव) और पहली नारकी, इन १०८ के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से २१६ और १७९ पूर्व कहे हुए । इस प्रकार ३९५ ।

१८ पाँच संज्ञी तिर्यंच में आगति-२६७ भेदों से-८१ प्रकार के देव (ऊपर के चार देवलोक, नौ ग्रैवेयक, पांच अनुत्तर विमान, इन १८ को छोड़कर) ७ नारकी के पर्याप्त और पहले कहे हुए १७९ भेद, ये सब मिलाकर २६७ भेद हुए । इन पाँचों की गति भिन्न-भिन्न इस प्रकार है-

जलचर की गति-५२७ भेदों में । ५६३ भेदों में से नौवें देवलोक से सर्वार्थसिद्ध तक के १८ जाति के देव के पर्याप्त और अपर्याप्त यों ३६ कम करने से शेष बचे हुए ५२७ ।

उरपरिसर्प की गति-५२३ भेदों में । ५२७ भेदों में से छठी और सातवीं नारकी के पर्याप्त और अपर्याप्त, ये ४ कम करने से शेष रहे हुए ५२३ भेद ।

स्थलचर की गति-५२१ भेद की। ५२३ में से पांचवीं नारकी का पर्याप्त और अपर्याप्त, ये २ छोड़कर ।

खेचर की गति-५१९ भेद की । ५२१ में से चौथी नारकी के पर्याप्त और अपर्याप्त ये २ छोड़कर ।



भुजपरिसर्प की गति-५१७ भेद की ।५१९ में से तीसरी नारकी के पर्याप्त और अपर्याप्त, ये २ छोड़कर ।

१९ असंज्ञी मनुष्य में आगति-१७१ भेद की । पहले कहे हुए १७९ भेदों में से तेउकाय और वायुकाय के ८ भेद कम करके शेष बचे हुए । **गति १७९ भेद की**-पूर्ववत् ।

२० पन्द्रह कर्मभूमि के संज्ञी मनुष्य में आगति २७६ भेद की। १७१ पूर्ववत् (असंज्ञी मनुष्य की आगति के समान) ९९ जाति के देव और पहली से ६ नारकी के पर्याप्त । गति ५६३ की **और मोक्ष भी** ।

२१ तीस अकर्मभूमि के संज्ञी मनुष्य की आगति-२० की। १५ कर्मभूमि और ५ संज्ञी-तिर्यंच, इन २० बीस के पर्याप्त । उनकी गति भिन्न-भिन्न निम्नानुसार है-

पाँच देवकुरु और पाँच उत्तरकुरु, इन दस क्षेत्रों के मनुष्यों की गति-१२८ की ।६४ प्रकार के देव पर्याप्त और ६४ अपर्याप्त।

पाँच हरिवास और पाँच रम्यक्वास, इन दस क्षेत्रों के मनुष्यों की गति-१२६ की । १२८ में से पहले किल्विषी के पर्याप्त और अपर्याप्त छोड़ कर ।

पाँच हैमवत और पाँच हैरण्यवत, इन दस क्षेत्रों के मनुष्यों की गति-१२४ की ।१२६ में से दूसरे देवलोक के पर्याप्त और अपर्याप्त छोड़ कर ।

२२ छप्पन अन्तरद्वीपों में आगति २५ की ।१५ कर्मभूमिज मनुष्य, ५ संज्ञी तिर्यंच और ५ असंज्ञी तिर्यंच के पर्याप्त । **गति १०२ की**-२५ भवनपति और २६ वाणव्यन्तर ।इन ५१ के पर्याप्त और अपर्याप्त ।



२३ तीर्थंकर की आगति ३८ की-३५ वैमानिकों के (किल्विषी छोड़कर) और पहले से ३ नारकी के पर्याप्त । **गति-**मोक्ष की ।

२४ चक्रवर्ती की आगति ८२ भेद से-९९ जाति के देवों में से १५ परमाधामी और ३ किल्विषी,इन १८ को छोड़कर शेष बचे हुए ८१ देव और पहली नारकी के पर्याप्त । **गति १४ की**-७ नरक के पर्याप्त और अपर्याप्त । (यदि दीक्षा लेवे तो देव या मोक्ष की)

२५ वासुदेव की आगति ३२ की-१२ देवलोक, ९ लोकान्तिक, ९ ग्रैवेयक और पहली व दूसरी नारकी के पर्याप्त । इस प्रकार ३२ । **गति १४ की**-सात नरक के पर्याप्त और अपर्याप्त।

२६ बलदेव की आगति ८३ की-चक्रवर्ती के ८२ और दूसरी नारकी से ✡।

२७ केवली की आगति १०८ की-९९ जाति के देवों में से १५ परमाधामी और ३ किल्विषी निकाल कर, शेष ८१, १५ कर्मभूमिज मनुष्य, ५ संज्ञी तिर्यंच, १ बादर पृथ्वी, १ बादर पानी, १ बादर वनस्पति और पहले की चार नरक । इस प्रकार १०८ के पर्याप्त । **गति मोक्ष की ।**

२८ साधु की आगति २७५ की-१७१ पूर्वोक्त (असंज्ञी मनुष्य की आगति नं. १९ के अनुसार) ९९ प्रकार के देव और

✡ बलदेव नियमा साधुपना धारण करते ही हैं । अतएव दीक्षा लेने के बाद साधु की जो गति (यानी ७० की अथवा मोक्ष की) है वही बलदेव की गति है ।



पहली पाँच नारक के पर्याप्त, इस प्रकार २७५ । **गति ७० भेद की**-१२ देवलोक, ९ लोकान्तिक, ९ ग्रैवेयक और ५ अनुत्तर विमान के देव । इन ३५ के पर्याप्त और अपर्याप्त, ७० या मोक्ष ।

२९ श्रावक की आगति २७६ की-पूर्वोक्त २७५ और छठी नरक । **गति ४२ की**-१२ देवलोक, ९ लोकान्तिक, इन २१ जाति के देवों के पर्याप्त और अपर्याप्त-४२ ।

३० सम्यग्दृष्टि की आगति ३६३ की-९९ प्रकार के देव, १०१ संज्ञी मनुष्य के पर्याप्त, १०१ सम्मूर्च्छिम मनुष्य १५ कर्मभूमिज मनुष्य के अपर्याप्त, ७ नारकी के पर्याप्त और तेजस्काय वायुकाय के ८ भेदों को छोड़कर शेष रहे हुए ४० भेद तिर्यंच के । सभी मिलाकर ३६३ । **गति २८२ भेद की**- ८१ जाति के देवता, १५ कर्मभूमिज मनुष्य, ३०अकर्मभूमिज मनुष्य, ५ संज्ञी तिर्यंच और पहली ६ नारकी, इन १३७ के पर्याप्त और अपर्याप्त, इस प्रकार २७४ तथा ३ विकलेन्द्रिय और ५ असंज्ञी तिर्यंच का अपर्याप्ता-ये २८२ ।

३१ मिथ्यादृष्टि की आगति ३७१ ✻ की-१७९ पूर्वोक्त भेद, ९९ जाति के देव, ७ नारकी पर्याप्त और ८६ युगलिक मनुष्य पर्याप्त । **गति ५५३ की**-५६३ में से ५ अनुत्तर विमान के पर्याप्त और अपर्याप्त-ये १० छोड़ कर ।

३२ मिश्रदृष्टि की आगति ३६३ (सम्यग्दृष्टि के समान)। **गति अमर,** क्योंकि मिश्रदृष्टि पने में जीव मरता नहीं है ।

✻ क्षयोपशम समकिती की अपेक्षा मनुष्य भव में आकर कोई जीव कुछ समय के लिए मिथ्यात्व फरस सकता है । अतएव अनुत्तर विमान वासी देवों को आगत में गिनना उपयुक्त है ।



३३ मांडलिक राजा की आगति २७६ की-श्रावक की आगति के अनुसार २७६ भेद । **गति ५३५ की** (५६३ में से ९ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तर विमान, इन १४ के पर्याप्त अपर्याप्त के २८ भेदों को छोड़ कर शेष रहे हुए) ।

३४ स्त्रीवेद की आगति ३७१ की-मिथ्यादृष्टि के अनुसार। **गति ५६१ की** (सातवीं नरक के पर्याप्त अपर्याप्त छोड़ कर) ।

३५ पुरुष-वेद की आगति ३७१ की-स्त्रीवेद की आगति के अनुसार । **गति ५६३ की** ।

३६ नपुंसक वेद की आगति २८५ की-१७९ पहले कहे हुए, ९९ प्रकार के देव के पर्याप्त, ७ नारकी के पर्याप्त-ये २८५ । **गति ५६३ की** ।

३७ गर्भज जीव की आगति २८५ भेदों से - उपरोक्त नपुंसक वेद की आगति के अनुसार । **गति ५६३ की** ।

३८ नोगर्भज ❊ जीवों की आगति ३२९ भेदों से १७९ की लडी, ८६ युगलिक और ६४ देव अथवा (३७१ में से नरक ७, तीसरे से बारहवें देवलोक तक १०, लोकांतिक देव ९, दूसरे व तीसरे किल्विषी के २, ग्रैवेयक ९, अनुत्तर देव ५ - ये ४२ छोड़कर) । **गति ३९५ की** । असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यचवत् ।

❊ जो माता के गर्भ से उत्पन्न होते हों-ऐसे संज्ञी तिर्यंच पंचेन्द्रिय के १० और संज्ञी मनुष्य के २०२ । कुल २१२ भेद छोड़ कर शेष ३५१ भेद नोगर्भज के हैं-डोशी ।

❊ गति आगति समाप्त ❊

॥ जैन सिद्धान्त थोक संग्रह भाग २ समाप्त ॥



जैन सिद्धान्त थोक संग्रह भाग १-२ समाप्त

